रामाश्रम सत्संग डिजिटल प्रकाशन

संत-वचन

(भाग ७)

परमसंत डा. श्री कृष्णलाल जी महाराज

के प्रवचनों का संकलन

रामाश्रम सत्संग (रजि०)

सिकंदराबाद (उ०प्र०)

विषय सूची

1. मोक्ष का जरिया-धन ?
2. वेदांत और संतमत
3. स्वाति बूंद के लिए मुंह खोले रहो
4. सच्चा साधन
5. ईश्वर से क्या मांगे और क्या न मांगे
   ईश्वर की इच्छा में प्रसन्न रहें।
6. भाव
7. दीन भाव
8. पिछले कर्म और उनके प्रभाव
9. सर्व प्रथम कर्तव्य क्या है ? समर्पण क्या है ?
10. मनुष्य के जीवन का ध्येय
11. अंध विश्वास
12. परमार्थ में कामयाबी हासिल करने के लिए जरिये
13. सच्चे आनन्द की प्राप्ति कैसे हो ?
14. सतसंग के वचन
15. ईश्वर प्रेम ही मोक्ष प्राप्ति का साधन है।
16. प्रश्नोत्तर
17. गुरु कैसा होना चाहिए ?
18. सन १९५८ के वार्षिक भंडारे (दशहरे) पर दिया गया प्रवचन
19. चेतावनी

समर्थ गुरु महात्मा रामचन्द्र जी महाराज (उर्फ़ लाला जी)

फतेहगढ़, उ० प्र० निवासी (जन्म १८७३ - निर्वाण १९३१)

एक प्रेम के नाते को छोड़कर मैं और किसी नाते को नहीं जानता। केवल प्रेम और वह भी निस्वार्थ प्रेम । जो लोग बिना अपने स्वार्थ के मुझे प्रेम करते हैं, चाहे वे सज्जन हैं या दुष्ट, मैं उन्हें प्रेम करता हूँ। वे मेरे हैं और मैं उनका । वे सदैव मुझ पर आश्रित रह सकते हैं और वे देखेंगे कि मैं सदैव उनकी सेवा के लिए प्रस्तुत हूँ ।

---परमसंत **डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज**

सिकंदराबाद उ.प्र.

(जन्म १९-१०-१८९४ - निर्वाण १८-०९-१९७०)

मोक्ष का जरिया-धन ?
(टेप का अंश)

कोई शख्स (व्यक्ति) ईश्वर को चाहता है लेकिन तुम दुनियाँ को चाह रहे हो, इसलिये तुम्हें उल्टा नज़र आता है । वो जो ईश्वर को चाहने वाला है उसे समझदार लोग सन्त कहते हैं । यानी गुरु को या जो तुम्हारा भाई जिसको तुमने (गुरु) मानां है । अगर वह तुम्हारे रुपये को तबाह (बरबांद) करने में है तो उसको क्या फ़ायदा मिलेगा ? किसी झाख्स (व्यक्ति) के पास पैसा है तो गुरु कहता है कि भाई, जिस किसी को देना है उसको दो । बांक़ी, देखो छोड़ के मत जाना । उसको गरीबों में तक़सीम कर जाना । 'बाँट देना। तो या तो उसके बदले में तुम्हें ईश्वर का प्यार मिलेगो और नहीं तो जितना तुम (गरीबों को) दे गये हो उससे दस गुना तुम्हें अंगले जन्म में मिलेगा । और अगर तुम ज़मीन में गाढ़ कर छोड़ गये तो साँप बनोगे यहाँ आ कर । इस तरह तुम दुनियाँ से नहीं निकल सकते । तो गुरु की इसमें क्या भलाई है । वो यह तो नहीं कहता कि मुझे दे दो । वो ये कहता है कि इसको गरीबों में बाँट दो । ग़रीबों को बाँटना क्या है ? आप समझते हैं कि कया आप गरीबों को बांट रहे हैं ? ईश्वर को दे रहे हो वापिस | ईश्वर की सर्विस (सेवा) क्या है ? ईश्वर के क्या तुम पाँव दबाओगे ? : जितने मुसीबतज़दा (दुखः के मारे) हैं उनमें सबमें ईश्वर बसता है । उनको जो तुम खानो, खलेप रहे हो तो ईश्वर को खाना खिला रहे हो । उनकी सेवा तो ईश्वर की सेवा है और ईइवर की सेवा का फल उसका प्रेम मिलता है। ईश्वर प्रेम से आपकी आक़बत (परलोक) बनती है और मोक्ष मिलती है। तो वो मोक्ष का तरीका बतला रहा है। तो उस रुपये से मोक्ष हासिल कर लो |

ये रुपया तुम्हारे किस काम का है । आप कहेंगे कि हमारे रिश्तेदार, कुटम्बी, वग़ैरा हैं जिन्हें देना जरूरी है | अव्वल तो वो मना नहीं करता, तुम जितना देना चाहते हो उतना उन्हें दो । मगर रिश्तेदारों से ताल्लुक कब तक है तुम्हारा ? तब तक है जब कि तुम्हारी आँखें खुली हैं (जीवित हो)

। मरने के वाद तुम्हारा उनसे कोई रिश्ता नहीं हैं । मरने के बाद क्या किसी का रिश्ता कायम रहता है ? ज़िन्दगी तक ताल्लुक़ (सम्बन्ध) है । मरने के बाद तो एक ही रिश्ता रहता है । जैसे तुमने कर्म किये हैं वो भोगोगे या बिल्कुल पाक (पवित्र, अछूते) जाते हो तो अल्लाह (भगवांन) से रिश्ता है और कोई रिश्ता ही नहीं है । मरने के बाद तो यह-बेटा हमारा कोई नहीं रहेगा –

फ़ातहा देंगे न फ़ानी में भी दो रोज़ के बाद । ख्वाह मरे गोद में ख्वाह बुढ़ापे में ।।।

भावार्थ- चाहे मरे हुए दो दिन ही हुए हों, कोई भी तुम्हारे लिए दुआ -नहीं करेगा, चाहे शिशुपन में मृत्यु हो चाहे वृद्धावस्था में ।

जो मरने पै संर पै रखकर खाक उड़ाते आ रहे हैं कल को तुम्हारे नाम पै ग़रीब को कोई दो घूँट पानी भी नहीं देगा । और बता दीजिये कौन देता हैं ? एक का भी नाम ले दीजिये । मरने के बाद कौन बाप की याद करता है । थोड़े दिनों घरंवाली की याद रहती है, थोड़े दिनों माँ बाप की याद रहती है, इसके बाद तो वही धन्धा है और वही हम हैं । सब भूल-भाल'गये । कौन फ़ातहा देता है (दुआ करता हैं) अपने बुजुर्गों के लिये ? यही दुनियां, हम हैं । कौन अपने बाप दादा के नाम पर खैरात करता है ? के नहीं करता । तो फिर जो चीज तुम्हारे हाथ में है उसकी तो जाने दीजिये - बाद में जों आप वसीयत करके जायेंगे वह भी उसे मिलेगा या नहीं मिलेगां, यह भी डाऊटफुल (सन्देहजनक) है ।

एक बड़े भारी रईस थे हमारे यहाँ । वें वसीयत कर गये कि मेरे नौकर को पाँच सौ रुपये दे देना । तीन सौ रुपया इसका मुझ पर चाहिये है और दो सौ और दे देना इसकी शादी के लिये । देहली में मौत हुई । मैं मौजूद था । डायरी में उन्होंने वसीयतनामा करके लड़के को दिया । उसने कहा-- हाँ लालाजी, हाँ पिता जी। - जैसा आप कहेंगे वैसा ही होगा । इंधर वो मरे, उधर पहला वार किया उनके लड़के ने वह उस नौकर पर किया । इतना मारा कि उसके कपड़े तक छीन लिये और

निकाल-बाहर किया । "क्यों -बे, तू हमारे बाप को ख़राब करता था ? किस बात के तुझे पाँच सौ रुपये दिये जाएँ, क्या तेरा वास्ता ।" तनख्वाह भी मार ली और घर से निकाल बाहर किया। तो था भी वह वसीयत करने वाला बेवकूफ । अगर अपने हाथ से दे जाता तो उसको कौन रोक सकता था । वो मालिक था अपनी चीज़ का । तो बजाय इस रुपये को खुद देने के, आप लिख कर दे गये। तो ये कौन सी अक्लमन्दी हैं । जितना जिसको करना है वह अपनी जिन्दगी में कर जाओ क्या होगा पीछे ये कोई नहीं जानता । लोग वसीयत करते हैं पर मुंबारिक रहें वो वकील लोग जो सच का भूठ और भूठ का सच कर दिखाते हैं । आप कितनी भी पाबन्दी करके जायें फिर भी । उसमें एक ऐसी मेख मार देंगे कि सब करा कराया बिगड़ जायगा । तो भाई उनके हाथों में क्यों छोड़ कर जाते हो ? जो तुम्हें करना है, करो । इसके लिये मना नहीं करते लेकिन-इस मिट्टी (धन) को क्यों मिट्टी में मिलाकर जाते हो, क्यों नहीं ईश्वर का ईश्वर को वापिस कर देते ? गरीबों को दो, गरीबों की मदद करो । अंपने रिश्तेदारों को देते हो मदद करते हो, यह तो तुम्हारा Interest (स्वार्थ) है । यह जो रिश्तेदारों को देना है यह conditional (लगाव के साथ) है, इसका कोई सबाब (पुण्य) नहीं है । यहं तो तुम अपनों को दे रहे हो, लड़कों को, भतीजों या बेटों को जो दे रहे हो वह तो तुम्हारा अपनों को देना हैं, condition (किसी शर्तें को लंगाकर) करके दे रहेहो । जो तुम without condition (बिना कोई शर्त लगाये, निस्वार्थ) गरीबों को दे - दोगे, यह तुम ईश्वर को दें रहे हो।. ईश्वर का दिया ईश्वर को वापिस कर जाओ क्योंकि पीछे यह तुम्हारे किस काम आयेगा ।

लेकिन अगर ये हम किसी से कहें तो कौन उसको मानने को तैयार होगा ? लेकिन इसमें क्या मूठ है ? हमारी जो बात सुनते हैं और हम पर विश्वास रखते हैं हम उनसे यही कहते हैं । सरदार जी (पूज्य भाई साहब करतार सिह साहव) से हमने वराबर यहीं कहा है, देखना, अपनी ज़िन्दगी में सब निबंटा जाना । हमने अपनी ज़िन्दगी में जितना हमसे हो संका रुपया या जोयदाद, संब खतम कर दी । ये मुसीबत कि मरते वक्त ये ख्याल आये कि हाय ! हमने ये नहीं किया, वो

नहीं किया, इंससे मरने से पहले ही क्यों न कर दें | हाँ, आप अपने गुज़ारें के लिए रख लें ये हम हमेशा करते रहे कि अपने लिये मरतें वक्त तक किसी के मौंहताज मत बनो । लड़कों के लिये सर दर्द मत बनो । इतना रख लो अपने पास कि मरते वक्त तक के लिये तुम्हारे लिये काफ़ी-हो जाय । और बाक़ी जा के ईश्वर को वापिस करो | अगर इसके बदले का ख्याल हैं तो अंगले जन्म में दस गुना मिलेगा। ये तो तुमने उस (ईश्वर) की बैंक में जमा कर दिया और अगर तुमने ईश्वर को सर्विस (सेवा) के ख्याल से दिया हैं तो ईश्वर का प्रेम मिलेगा । और इसके बदले में आख़िर में मोक्ष मिल जायगा | यही (धन) तुम्हारे बंधन का वायस (निमित्त) हैं और वही तुम्हारी मोक्ष का वायस हैं । तो गुरु तो यह कहता हैं कि अपने पैंसे से सौंदा करो मोक्ष का । अगर धरती पर छोड़ कर जाओगे तो बेकार | रिश्तेदारों को देकर जाओगे तो आज तक तो हमने यही देखा कि जिसको दिया उसने फ़ज़ीते ही किये । बाद में यही कहते हैं कि देखो साहब, उसको सब कुछ दे गये, हमें कुछ नहीं दे गये । उनकी सब कुछ सर्विस (सेवा) करो, फिर भी बेकार बनो | इसलिये जितना ज़रूरी हो उतना दो, बाकी अल्लाह का अल्लाह को वापिस कर दो । यह मग़फ़रत (मोक्ष) का ज़रिया हैं।

वेदान्त और संतमत

(टेप का अंश)

वेदान्त के मत से छः साधन हैं । (१) शम (२) दम (३) तितिक्षा (४) उपरति (५) समाधान (६) समर्पण ।

शम

पहला साधन है कि मन को ऐसी चीज़ में लगा दो जहाँ वह ठहरे और उसको आनन्द मिले, यानी उसको किसी centre (केन्द्र) पर स्थिर कर दो । जब मन स्थिर हों जायगा तो उसके साथ-साथ आत्मा भी ठहरेगी क्योंकि मन और आत्मा दोनों एक साथ चल रहे हैं । आत्मा का जो अन्दर का आनन्द है, वह प्रकट होने लगेगा । मन को किसी चीज़ पर ठहराने से जो आनन्द मिलता है वह मन का नहीं है क्योंकि मन तो बेजान है । उसमें जो आनन्द है वह आत्मा का है जो आनन्द स्वरूप है । मन को सब तरफ से हटाकर सिर्फ एक चीज़ के ध्यान में लगा देना है । अब इसके साथ-साथ अगर उसे ऐसे महापुरुष (सन्त) के ध्यान में लगाओगे जिसका चरित्र भी बना हुआ है यानी जो पूरी तरह चरित्रवान हैं (इखलाक का दुरुस्त हैं) और जिसने ईश्वर की प्राप्ति कर ली है तो इससे तीन फायदे होंगे । मन जो बाहर की तरफ़ दुनियाँ में फैला था वह अन्दर की तरफ़ को हो गया और ईश्वर का प्रेम मिलने लगा। इस वास्ते बतलाया है कि जो अन्दर फ़ोकस (चित्रण) रखो वह किसी ऐसी महान आत्मा का हो जिसने ईश्वर की प्राप्ति कर ली हो। उसका ध्यान बनाना 'शम' है ।

दम

जब मन ऊँचा उठने लगेगा तो जो इन्द्रियाँ विषयों में लगी थीं और जिससे मन को गिज़ा (पोषण) मिलती थी और इन्द्रियों की तरफ़ भागता था वह मन एक विन्दु पर स्थिर हो गया और उसमें से

जो शक्ति इन्द्रियों के द्वारा बाहर की तरफ़ जा रही थी वह रुक गयी । अब वह एक तरफ़ यानी अन्दर की तरफ़ को केन्द्रित हो गयी । इस तरह बड़ी आसानी से इन्द्रियों को विषयों से हटा सकते हैं। यह 'दम' है । 'दम' माने दमन करना (इन्द्रियों का)।

पहले पहल इन्द्रियों का दमन करने में बड़ी मुश्किल होती है क्योंकि मन से उनको ताक़त मिल रही है । इन्द्रियाँ बेजान हैं । उन्हें जो शक्ति मिलती है वह मन से मिलती है जो आत्मा पर सवार है । मिसाल के तौर पर आप बैठे हुए हैं, हम आप बातचीत कर रहे हैं और बाहर लड़के शोर मचा रहे हैं लेकिन हमें सुनायी नहीं देता । कान तो-मौजूद हैं फिर क्यों नहीं सुनायी देता ? उस बात की तरफ़, जो उसके सुनने का काम है, वहाँ क्यों नहीं जाते ? बात यह है कि वहाँ पर आपके मन की शक्ति नहीं है क्योंकि आपको ध्यान यहाँ है । ऐसे ही आँख का है। आंप किसी चीज़ के सोच विचार में पड़े हुए हैं, आँखें खुली हुई हैं और कोई चीज सामने से निकल गयी तो वह दिखाई नहीं देती । आँख तो प्रकाश नहीं है, आँख में तो जब किसी चीज़ का फ़ोकस पड़ता है और अन्दर से जब उस पर प्रकाश पड़ता है और दोनों मिल जाते हैं तब कोई चीज़ दिखाई देती है । आँख के अन्दर रोशनी है लेकित सूरज छिपा हुआ है और अन्धे रा है तो क्या दिखाई देगा ? सूरज भी निकला हुआ है लेकिन खयाल दूसरी तरफ़ है तो भी दिखाई नहीं देगा । ख्याल भी बाहर की तरफ़ है और सूरज भी चमक रहा है और आँख भी फ़ोकस ले रही है तब दिखायी देगा ।

उपरति और तितिक्षा

विषयों से मन और इन्द्रियाँ इस तरह से हटकर अन्तर्मुखी हो जाती हैं जिस तरह कछुए के हाथ-पाँव । जब उसको बाहर से कोई छेड़ता है तो वो हाथ पाँव अन्दर की तरफ़ सिकोड़ लेता है । अब उसे कोई ख़तरा नहीं रहा। तो कछुआ यह मन है जो अपने हाथ पाँव (इन्द्रियों) से बाहर की तरफ़ जा रहा था और अब उनको बाहर से हटाकर अन्दर की तरफ़ ले आया और बेफ़िकर हो गया । अब

बाहर से उसके ऊपर कोई आपत्ति नहीं है । अन्दर अपने ध्यान में लगा हुआ है । इन्द्रियाँ बाहर को खेंच रही थीं, इन्द्रियों का दमन हो गया, अब मन को शान्ति आ गयी ।

तुम्हारे अन्दर आत्मा का आनन्द हो रहा है। मन पर रोक लगने से उसमें स्थिरता आ गयी तब ऐसा लगने लगता है कि बाहर जो आनन्द है यह तो भीतर के आनन्द का हज़ारवाँ हिस्सा भी नहीं है । ऐसी हालत में आप चाहेंगे कि आँखें बन्द करके उस भीतर के आनन्द को ही देखते रहें। अब मन दुनियाँ में नहीं लगता बल्कि दुनियाँ से उपराम हो जाता है।

जब मन को अन्दर से आनन्द आने लगा, दुनियाँ की चीज़ों से उसका लगाव नहीं रहा तो गर्मी, सर्दी, इज्जत, बेइज्जती कोई कठिनाई उसके लिये रही ही नहीं । अगर उसकी साधना के रास्ते में कोई कठिनाई आती है तो अन्दर का आनन्द उसको हटा देता है । गुरु का काम कर रहे हैं, आनन्द आ रहा है, किसी बच्चे ने आकर छेड़ दिया और परेशान कर रहा है, हालाँकि हम उसको प्यार करते हैं तो भी उसे हटा देते हैं। हर प्रकार की कठिनाई जो इस सार वस्तु को हासिल करने के लिए , जिसके लिए हम प्रयत्न कर रहे हैं अगर रुकावट बनती है तो उसको हम हटा देते हैं । गर्मी है सर्दी है, इज्जत है बेइज्जती है, दुनियाँ का माल है, कठिनाइयाँ हैं, यानी जितनी भी रुकावटे हैं, उन सब को अपने प्रीतम की राह से हटा देते हैं । '

जब तक दुनियाँ की क़दर है तभी तक तो गुरु के पास जाने में कठिनाई मालूम देती है । अभी एक बहिन हम से कह रही थीं कि हम (गुरु के पास) जाना तो चाहती हैं लेकिन रुपया हमारे पास नहीं रहता | रुपया तो है मगर दुनियाँ की क़दर ज्यादा है इस वास्ते रुपया इधर नहीं ख़र्च करना चाहतीं । जब दुनियाँ से उपराम हो गये और इसको (परमात्मा को) हमने essential (मुख्य) समझ लिया तो चाहे किसी तरह इसके लिये रुपया बचाना पड़े, हम जायेंगे ज़रूर, हर रुकावट को पार करेंगे । नहीं है पैसा तो पैरों चलकर जावेंगे । क्या लोग पुरी की यात्रा को पैदल

नहीं जाते ? गुरु की यात्रा को पेंदल जाने का ज़्यादा महत्व है, उसे ज़्यादा इज्ज़त देते हैं क्योंकि जो पैदल चल कर जाता है, रास्ते की तकलीफ़ें उठाता है वह कितना शौक़ लेकर जाता है । जितना वह शौक़ लेकर जाता है उतना ही फ़ायदा पाता है क्योंकि शौक़ चीज़ पर तो निर्भर नहीं करता, शौक़ मन की हालत पर निर्भर करता है । आपके मन में शौक़ नहीं है आप किसी फ़क़ीर के पांस जा रहे हैं । इच्छा है नहीं, तो जब वहाँ जाकर बेठेंगे, कहेंगे कि साहब हमको तो कुछ अनुभव हुआ ही नहीं । दूसरा, जो बड़े उत्साह से जाता है शौक़ से जाता है, वह समझता है कि मैं किसी बड़े महापुरुष के पास जा रहा हूँ तो वहाँ जाकर उसको बड़ा आनन्द मिलता है । यह फ़र्क क्यों हो गया ? तुम्हारे मन का फ़र्क है। उस फ़क़ीर में कुछ कमाल है या नहीं मगर पहली चीज़ तो तुम्हारा मन है । अगर मन में उत्साह है तो न होते हुए भी मन में कुछ न कुछ आनन्द को अनुभव होगा । और अगर मन में उत्साह बिल्कुल नहीं है तो यदि फ़कीर की सौहवत में आनन्द होगा भी तो वह तुम्हें महसूस नहीं होगा । यह तितिक्षा है ।

समाधान और समर्पण

इन्द्रियाँ शुद्ध हो गई, अब विषयों की तरफ़ नहीं जा रहीं । मन में किसी चीज़ की इच्छा नहीं रही, मन शुद्ध हो गया । अब जो तुम्हारे संशय हैं, धर्म के बारे में, ईश्वर के बारे में, साधना के बारे में, उनको दूर करो । एक ऐसे महापुरुष के पास जाओ जिसने अपनी आत्मा का साक्षात्कार कर लिया हो, पूर्ण ज्ञानी हो, शास्त्रों का ज्ञाता हो और तुम्हारां और सारे जगत का हितेषी हो वहाँ जाकर अदब से बैठो क्योंकि बेअदबी से कुछ हासिल नहीं क सकते । बेअदबी यह है कि वह आँखें बन्द किये बैठ हैं और आपने जाकर फट से सवाल शुरू कर दिया - हाँ साहब, यह फ़लानी चीज़ कैसे हुई ?" आपने उस महा आनन्द की दशा जिसमें वह बैठा हुआ है, वहाँ से फटका देकर उसे नीचे डाल दिया । अब उसे होश आया तो कया वो खुश होगा ? दूसरे जो बात उसने आपके हित की अपने अनुभव

से कही, आपके भले के लिये कही और आपने फट कहा "साहब, ये बात तो ऐसे नहीं हैं, ये तो ऐसे हैं तो वह क्या कहेगा ? वह कहेंगा --"भाई, तुम गुरु बनने आये हो या शिष्य बनने । पूछने आये हो या हमें सिखाने आये हो ।" एक मूरख थे, वह एक बड़ी ऊँची जगह पहुँचे, एक फकीर के पास, उससे कहा ये बात ऐसी नहीं हैं, ये बात तो यों हैं, उसे सिखाया । हम अपने ऊपर नहीं कह रहे हैं, दरअसल बड़े ऊँचे ऋषि के पास पहुंचे, उत्तरकाशी में, बड़ी तकलीफ उठाकर पहुँचे । उन्होंने कह दिया, 'भाई, तुम सीखने आये हो या सिखाने आये हो ? " अगर अक्लमंद थे तो यहीं चुप हो जाना जाहिये था । पर वे और आगे बढ़ें । कहने लगे, "यही तो मैं कहता हूँ कि अब आप मुझसे सीखिये ।" हमसे वे यह तारीफ़ खुद ही कर रहे थे । कहने लगे, "फिर मैंने उनसे कहा देखिये, आप तैयार हो जाइंये, मैं झोका देता हैं, ज़रा संभलिये अब आप ।" वाहं रे मूर्ख ! ऐसे मूर्ख से क्या कहे अपने आपको, आप समझते हैं कि हम जान गयें । ऐसे को कोई कह सकता है जानने वाला ? गुरु नानक देव इतने बड़े संत गुजरे हैं , वे कहते हैं कि कुछ नहीं जाना, मगर साथ ही कहते हैं कि जो ज्ञानी हैं उनका मैं गुरु हूँ, जो अज्ञानी हैं, उनका मैं दास हूँ । ऐसे का तो दांस ही बन जाना ठीके है। तो उन ऋषि ने भी उन महाशय से कहा, भाई ठीक है ।

हमेशा गुरु ऐसा ही कहते हैं । हमारे यहाँ भी तीन चार आदमी गये महाराज जी (परंमसन्त अक्षय कुमार बैनरजी गोरखपुर) के पोस । हम जानते थे कि यह सिखाने जायेंगे । वह इस वास्ते जाते थे कि हंम जायेंगे, अंपना ज्ञान बतायेंगे गुरु महाराज हमारी बड़ी-तारीफ़ करेंगे कि तुम बंड़े ज्ञानी हो, जितने भी पास बेठने वाले हैं हमको ज्ञानी समझेंगे । यह उनके मंन की मन्शा थी। सीखने जाने का ख्याल नहीं था । वहाँ पहुँचे, उन्होंने कुछ ऐसी ऊँची बातें कीं तो मंहोराज जी नें ऐसा जवाब दे दिया कि धड़ाम से नीचे गिरे, फिर उनके पास नहीं गये । कई दिन रहे लेकिन पास नहीं गये । हमनें जाने को कहा भी तो कहने लगे कि तुम्हीं जाओ हम नहीं जाँयेंगें । हो गये पंचर । तो Principle (सिद्धान्त) यह है कि जिस किसी के पास जाओ, दीन बनकर जाओ । हमने डाक्टरी

सीखी, किससे ? कम्पाउन्डरों से, ऐसों से जो quacks (अनाड़ी) थे। हमें force (बाध्य) तो नहीं कर सकते थे किसी चीज को क़बूल करने के लिये । अब अगर उनसे डाक्टर बनकर कुछ प्राप्त करें, ऐसा सम्भव नहीं । हमारे यहाँ शफाखाने के डाक्टर आते जाते हैं, कोई होशियार होते हैं और कोई मूर्ख भी होते हैं । अगर दोस्ती हो गई और बातचीत हुई तो हमने कहा "साहब, ऐसे ऐसे एक मरीज था ।" इतने पर ही उन्होंने अपना तजुरबा कहना शुरू किया । अब अगर उसी वक्त हम कह दें कि हमने ऐसा ऐसा किया, यह फ़ायदा पाया, यह दवा बड़ी माकूल (उपयोगी) है उसके लिये, तो आगे वे अपना अनुभव क्या बतायेंगे ? हम तो गुरु बन गये वहाँ जाकर । अब वे कहते रहे । दस बातें उन्होंने बतलाई ? फ़र्ज किया (माना कि) आप आठ आज़मा चुके हैं, दो नहीं आज़माई । उससे हमें कौन रोकत है कि दसों को तुम क़बूल करो, जो तुम अच्छी समझो, उसे क़बूल करो, बाक़ी छोड़ दो। हमारा रोज़ाना का ये तजुरबा है कि जब छोटे से कुछ हासिल करना हो तो उससे और नीचे उतर जाय, और जितना ऊँचा बनकर चलेगा तो कभी हासिल नहीं होगा।

आप ही हैं, आप लड़के हैं, आप बातें करते रहते हैं, हम जानते नहीं कि हम Science (विज्ञान) में कुछ अनुभव रखते हैं । लेकिन अगर हम अपना बड़प्पन दिखायें तो आप चुप हो जाओगे। हमने बहुत सी बातें तुम से स्वयँ सीखीं । एक बात तुमने हमसे कही थी, कि यह पंखा चाहे धीमा चलाओ चाहे तेज़ चलाओ, खर्चा उतना ही होगा । हमने तुम्हें बड़ा माना, उस बात को ग्रहण कर लिया। किसी ने किसी से पूछा तुमने अक्लमंदी कहाँ से सीखी ? जवाब मिला बेवकुफों से। गोरखपुर में महाराज जी के पास बहुत सी बातें ऐसी थीं जो हमारे views (दृष्टिकोण) के खिलाफ़ थीं, पर हमारा क्या, जो हमने लाला जी के ख़तों से अपना Idea (विचार) क़ायम कर लिया, वही हमारी views (दृष्टिकोण) थीं । जब बातचीत हुई तो उन्होंने कहा, नहीं, ऐसा नहीं ऐसा था। उन्होंने जो अपना ख्याल जाहिर किया वह माना नहीं हमने, लेकिन बेशक' ज़रूर कह दिया । घर पर आये, सोचते-

रहे, दो रोज़, तीन रोज़, चार रोज, आख़िर में या तो हमारी समझ में आ गया कि ठीक कहा, और नहीं आया तो चुपके से जाकर कहा, "महाराज जी, यह बात हमारी समझ में नहीं आयी, इसे और समझा दीजिये, गुरुदेव ने तो ऐसा कहा है ।" बड़ी खुशी से उन्होंने समझा दिया । तो पहले ही रोज हम उसी वक्त बात काट देते कि साहब ऐसी बात तो हमारे गुरुदेव ने नहीं कही तो वह बेअदबी होती । एक बात में हमने की उनसे तकरार, उसी वक्त वे बात काट के अलहदा हो गये । आगे समझाते परन्तु उस वक्त हमने वहीं के वहीं जवाब दे दिया । बाद में हम समझ गये कि हमने बड़ी ग़लती की । एक लड़के के बारे में हमने शंका की कि महाराज, अभी तो यह बच्चा है, अभी इसने दुनियाँ का देखा क्या है जो आपने उसे सन्यास दे दिया । उन्होंने कहा – सन्यास बेहतर है । हमने कहा, दुनियाँ में भोग करके फिर सन्यास हासिल करना यह बेहतर है । उन्होंने कहा दोनों ठीक हैं । टाल गये, वरना वे आंगे discuss (वार्ता) करते । ऐसे शख्स के पास जब जाओ तो पहले उसका mood (मूड) देखो, तब उससे बात करो । अगर वह किसी बात को कहे कि अमुक बात सत्य है, तो उसे सच मान लो और कोशिश करो कि वह सच साबित हो जाय । अपने मन के अन्दर, अपनी बुद्धि से विचारते रहो और उसे ग्रहण करने कीकोशिश करो, क्योंकि उसका तजुरबा सत्तर-अस्सी बरस का है । फिर हम किसी के पास जाते हैं गुरु बन कर या शिष्य बन- कर ? हम तो कुछ लेने जाते हैं।

एक दफ़ा हम अपने गुरुदेव के साथ कन्नौज से पलली तरफ एक गाँव है, वहाँ गये । वहाँ से चार पाँच मील के फ़ासले पर एक साधू रहते थे । गुरुदेव ने कहा, आओ उन साधु के पास चलें । जाड़े के दिन थे | हम सुबंह ९ बजे ही सब लोग उठे और दो घन्टे में वहाँ पहुँच गये जहाँ वे साधु रहते थे । पता लगा कि साधु अपनी कोठरी में बैठे हुए कुछ भजन कर रहे हैं । हम वहाँ पहुँचे तो जैसे सन्यासियों का होता है, सबने नमस्कार किया, फिर बैठ गंये । वहाँ पर बैठने की भी ज्यादा जगह नहीं थी, हमारी बेवकुफ़ी, हमें ये बुरा सा लगा । हमने आगे बढ़कर कोठरी में बैठे हुए साधु से कहा

कि हमारे गुरुदेव तशरीफ़ लाये हैं आपसे मिलने के लिये । उन्होंने कहा, अच्छां चटाई को बाहर डाल लो, इस पर बेठो, हम अभी आते हैं । चटाई डाल ली, धूप में बैठ गये | अब वह गुरुदेव की तंरफ़ मुख़ातिब हुए । पूछने लगे क्या है, आपका कौनसा तरीक़ा है, फ़लाना है, इत्यादि | कोई दस-पन्द्रह मिनट बातें कीं । जितनी देर तक वे बातें करते रहे उतनी देर तक सवाल करते रहे, क्योंकि गुरु की हैसियत से गये थे । जैसे ही उन्होंने ख़त्म की गुरुदेव ने कहा 'मुझे इजाजत दीजिये, मैं चलूँ ।' हम बड़े खुश थे कि हमारे कहने से इन्हें होश तो आया, चटाई तो बाहर बिछा दी उन्होंने, हम सब बैठ तो गये-। ज़रा पीछे हुए तो गुरुदेव हमारी तरफ़ मुखातिब हुए । कहने लंगे कि तुम तो बड़े नालायक़ हो । हम बड़े घबराये | वे कहने लगे कि तुमने हमारा आना जाना नास कर दिया | मैं इन साधु की तारीफ़ सुनकर आया था, इतने बुढ़ापे में सुबह उठकर आया थां कुछ हासिल करने आया था । अगर वह गुरु था, रोशन-ज़मीर (आत्म ज्ञानी) थां, तो खुद दरयाफ्त कर लेता, तुम्हें कहने की क्या ज़रूरत थी ? तुमने गुरु कह दिया, वह चिढ़ गये, वह इम्तहान लेने लगे । इस वास्ते मैं और कुछ हांसिल नहीं कर सका ।

इस तरह से शिष्य बनकर एक ऐसी महान आत्मा के पास जिसने वेदों को पढ़ लिया है, कुछ गुन लिया है वेसा बन गया हैं, (जब तक बनता नहीं है, तब तक विद्वान कहलाता है, संत उस वक्त कहलाता है, कि जैसा वेदों में लिखा है, वैसा वह बनकर वेदों को ज़ाहिर कर रहा है, असल में) उसके पास जाओ । जाकर अपनी सब बातों को जो शक् (शंकायें) अपने mind (दिमाग) के हैं, सब रफ़े (निवारणं) करो, वेदों को पंढ़ो, समझो । वहाँ से हटकर फिर किसी दरिया (नदी) के किनारे या एकान्त में जाकर मनन करो, वेसा काम करो । कोशिश करो कि वैसे बन जाओ | जब (सम्पूर्ण) वैसे बन जाओ, तव दुनियाँ में जाओं, और लोगों को शिक्षा दो ।

आपके यहाँ गुरु कृपा पर ज्यादा भरोसा किया जाता है, यह प्रेम का मत है । जो अभी बतलाया वह ज्ञान का, अभ्यास का मत है।

गुरुदेव सबका कल्याण करें ।

स्वाँति बूंद के लिये मुंह खोले रहो

दिनाँक २२-७-६८

आत्मा का, शरीर और मन से मेल नहीं बेठ सकता | तन और मन सभी तो आत्मा को इस संसार में फंसाने वाले हैं । यही वजह है कि इनको आत्मा का बैरी कहते हैं । शरीर मिट्टी से बना है, मिट्टी में मिल जायगा और मन जो काल पुरुष का अंश है, उसमें मिल जायगा । आत्मा जो परमात्मा का अंश है वह अपने अंशी (परमात्मा) के चरणों में चली जायगी | जब से यह सृष्टि पैदा हुई है न मालूम इस आत्मा ने कितने शरीर धारण किये और छोड़े । न मालूम किन-किन योनियों में भ्रमण किया। किसी शरीर ने आत्मा का साथ नहीं दिया । इसका (आत्मा का) साथी तो एकमात्र परमात्मा ही है जो सदा से है और सदा रहेगा । आत्मा के सहायक तो सिर्फ परमात्मा या जिन संतों ने उससे (परमात्मा से) अपना मेल कर लिया है और उसके ध्यान में बराबर लीन रहते हैं वे ही हो सकते हैं । लेकिन मन को छोड़ा भी नहीं जा सकता, बिना इसकी मदद के भी काम नहीं बनने का। मन को सँवार (ठीक करके) परमात्मा को पाने का रास्ता तय किया जाता है । मन का रुझान बराबर नीचे को है । यानी वासना-तृप्ति और ख्वाहिशों की पूर्ति में है । उसका रुख पलट कर सत की ओर कर देना है, यानी नेकी, दूसरों की भलाई, ईमानदारी और सच्चाई जैसे गुणों को क़बूल करना है जो ईश्वर प्राप्ति में सहायक हैं । सब अवगुणों को त्यागना है ।

मन के तीन रूप तम, रज, और सत हैं | तम और रज से ऊपर उठकर सत को अपनाना चाहिए । तम का स्थान नाभि के मुक़ाम तक है। रज का स्थान हृदय में है, सत का स्थान दोनों भौंहों के बीच में है और आत्मा का स्थान इससे थोड़ा और ऊचा है। आत्मा का साक्षात्कार तभी हो सकता है जब जीव पहले सत् पर आवे, जिसका स्थान आत्मा के नज़दीक है । फिर उससे ऊपर उठे।

जो जीव तम और रज में बर्त रहे हैं वे तो विपरीत दिशा में नीचे की ओर बह रहे हैं । उन्हें भला आत्मा का अनुभव कैसे हो सकता है । जब जीव का स्वभाव सतोगुण प्रधान हो जायगा तो फिर रजोगुणी और तमोगुणी मन भी उसमें मिलकर लय हो जायेंगे । यही सतोगुणी मन ऊँचा उठकर आत्मदर्शन करने का अधिकारी बनता है ।

आत्मा में शक्ति (energy) है । वह स्वभाव से ही सत, चित और आनन्द है लेकिन इसमें हरकत (movement) नहीं है । हरकत तो मन में ही है । इसलिये जब तक अपने मन में उद्धार के लिए तड़प और विरह न जागे, दुनियाँ के तमाम सन्त-जन और खुद ईश्वर भी जीव का उद्धार नहीं कर सकते । इसलिये ज़रूरी है कि अपने मन में परमात्मा से मिलने के लिये विरह और लगन हो, तभी फ़ायदा हो सकता है । जब खुद कोशिश की जाय और जान की बाज़ी लगा दी जाय तभी गुरु तथा ईश्वर की भी मदद मिलेगी और शीघ्र काम बनेगा। स्वाँति की बूँद हर सीप पर पड़ती है । लेकिन मोती उसी सीप में बनता है जिसका मुंह खुला होता है । जिनका मुँह बन्द है वे फ़ायदा नहीं उठा पाते। अतः मन में अपने उद्धार के लिये तीव्र इच्छा का होना अति आवश्यक है । निज कृपा के बिना गुरु कृपा और ईश्वर कृपा का कोई फ़ायदा नहीं उठा सकता यद्यपि गुरु कृपा निरन्तर बरस रही है।

गुरुदेव सबका कल्याण करें।

सच्चा साधन

(कृपया ध्यान-पूर्वक पढ़ें)

हर मत वालो यह दावा करने को तेयार हैं कि मेरा तरीक़ा : (पंथ) सबसे अच्छा, सरल और प्रभावशाली हैं, लेकिन यह तो अमल (अभ्यास) और शगल (साधन) और जाँच पड़ताल के बाद ही मालूम हो सकता हैं ।

इंस पिण्ड शरीर में मामला विल्कुल ऊल्टा हो गया हैं । होना तो यह चाहिये था कि आत्मा से हिदायत (आदेश) लेकर बुद्धि काम करती और बुद्धि के कहने में मन चलता और मन के कहने में इन्द्रियाँ रहतीं । मगर पिण्ड शरीर में तरतीब (क्रम) बिगड़ गई । आत्मा, जो सबसे ऊपर थी वह सबसे नीचे दब गई और मन बुद्धि के ऊपर आ गया और इन्द्रियाँ मन पर चढ़ बैठीं । अब जो - इन्द्रियाँ चाहती हैं, मन खुशी से या बगैर खुशी उनके कहने में चलता हैं और बुद्धि मन की ख़्वाहिशात (इच्छायें) पूरी करेंने मे लंगी रहती हैं और आत्मा अंज्ञानवश उंसी के साथ-साथ चलती रहती हैं और आहिस्तां आहिस्ता अपना असली रूप भूल कर (जो सच्चिदानन्द पूर्ण ज्ञान और पूर्ण सत्ता हैं) इन्द्रियों और मन के तुच्छ आनन्द में सच्चा आनन्द तलाश करती हैं और दुनियाँ के आनन्द में धंसती चली जांती हैं । दुख पर दुख उठाती चली जाती हैं और आवागमन के चक्कर में फंसी रहती हैं और फंसी रहेगी । जब तक अपने असली रूप को न समझेगी तब तक जो मामला उल्टा हो गया हैं सीधा न होगा।

इसका तरीक़ा यह हैं कि ऐसा साधन किया जाय जिसमें आत्मा को अपना असली रूप मालूम हो, बुद्धि मन की ग़ूलामी छोड़कर आत्मा के कहने पर चले और मन बजाय इन्द्रियों के वश में होने के उन पर क़ाबू करके बुद्धि के कहने में चले और इन्द्रियाँ मन के कहने में रहकर जहाँ जैसी ज़रूरत हो काम करें । ऐसा अभ्यास करने से आत्मा का पूरा विकास हो जायगा, यानी पूरी चेतन्यता आ जायगी और वह आनन्दरूप, ज्ञानरूप, सत्यरूप, प्रेमरुप होकर अपने प्रीतम परमात्मा से मिल

जायगी, जो सत्य, ज्ञान, आनन्द और प्रेम का अथाह भंडार हैं । यह साधन सतगुरु, सत्संग और सतनाम हैं।

सतगुरु वह हैं जो ऊपर लिखी हालत पैदा करदे यानी आत्मा ईश्वर के चरणों में लग रही हैं और जो, ऊपर से हिदायत (आदेश) होती हैं उसके मुताबिक़ काम करता हैं । बुद्धि आत्मा के कहने में काम करती हैं । मन बुद्धि के कहने में काम करता हैं और इन्द्रियाँ मत के कहने में चलती हैं ।

सतसंग दो तरंह का होता हैं, बाहरी और अन्दरूनी । बाहरी सत्संग यह हैं कि गुरु के अंग संग रहना । गुरु के: साथ रहना, उसके वचन को हितचित से ठीक-ठीक सुनना और उनके कहने के मुताबिक़ अपनी रहनी सहनी बनाना । अन्दरूनी सत्संग यह हैं कि मन से उतका ध्यान करना, उनका बताया हुआ अभ्यास करना और उनके साथ में रहकर उनके ख्यालात, उनकी रहनी सहनी, उनके हरकात और सकनात जो सौहबत में रह कर देखे हैं उनको हर वक्त निगाह के सामने रखना और वेंसा बनने की कोशिश करना । उनसे ख़तो-किताबत (पत्र-व्यवहार) करते रहना ।

सत्नाम सच्चे मालिक का ध्वन्यात्मक नाम हैं जिसको गुरु अपने शिष्य को देता हैं । इसका अन्दर की जुबान से उच्चारण करना ओर अन्दर के कानों से सुनते रहना । इन्सानी जिस्म एक रथ हैं जिसमें आत्मा मालिक हैं, कोचवान बुद्धि हैं, लगाम मन हैं और इच्द्रियाँ घोड़े हैं और दुनियाँ एक सड़के हैं जिस पर चलकर उसको अपने प्रीतम के पास जाना हैं । अब अगर बुद्धि मालिक के कहने में नहीं हैं और कोचवान के हाथ में लगाम खाली हैं और उसके काबू में नहीं हैं और मन बुद्धि के कहने में नहीं चलता हैं और घोड़ों ने अपनी लगाम अपने मूह में दाब रखी हैं और जिधर को चाहते हैं चलते हैं और लगाम के इशारे की परवाह नहीं करते हैं, यानी इन्द्रियाँ मन के काबू में नहीं हैं, और बेपरवाह होकर विषयों में बतंती हैं तो रथ का मालिक (आत्मा) कभी भी अपने प्रीतम (परमात्मा) से नहीं मिल सकता और कभी आनन्द और चैन नहीं मिल सकता और इसी सुनसान वियावान (निर्जन) जंगल में यानी इन्द्रिय-भोग में दु:ख पर दु:ख उठायेगा और मारा-मारा फिरता रहेगा ।

हरकांत और सकनात ऽ- कर्म और व्यवहार ।.

ईश्वर से क्या मांगें और क्या न माँगें ।

ईश्वर की इच्छा में प्रसन्न रहें ।

(१)

वादये वसल च् शबद नज़दीक ।

आतिशे शोक़ तेज़् तर गरदद।।

जितनी माशूक (प्रियतम) के मिलने की घड़ी नज़दीक आती जाती है उतना ही मिलने का शौक तेज़ होता जाता है । यानी जितनी मौत की घड़ी तज़दीक आती जाती है उतना ही आनन्द आता जाता है और बड़ी खुशी होती है. कि कब मरूँ और कब प्रियतम में समा जाऊँ । मगर यह किसकी हालत है ? जिसने अपनी आत्मा को ईश्वर में मिला दिया है और दुनियाँ भोग रहा है बुद्धि से | attachment (लगाव) उसका ईश्वर से है । वह अपने संस्कार भी भोग लेता है. और परमार्थ भी उसका-बन जाता है । मरते वक्त रोता हुआ नहीं जाता और फिर यहाँ वापिस भी नहीं आता क्योंकि यहाँ उसका किसी से लगाव ही नहीं है ।

अपने स्थूल शरीर पर जो दुख सुख का अनुभव होता हैं वह अपनी सुरत (attention) के द्वारा होता है । चोट लगी, बड़ा दुख हुआ । लेकिन आपको सुरत का अभ्यास आता है, यानी आपने अपनी सुरत को नीचे से ऊपर ले जाने का अंभ्यास कर रखा है तो आप उस समय mental plane (मन के स्थान) पर आ जाइये, यानी physical plane (स्थूल शरीर) से ऊपर उठा 'लीजिये तो वह कष्ट अनुभव नहीं होगा | इसे करके देख लीजिये ।

इसको यों समझ लीजिए कि आप को जिस चीज़ में आनन्द मिलता है, जैसे ताश, शतरंज, या आपके किसी दोस्त की सौहबत, उसमें अपनी attention (सुरत) को जोड़ दीजिए । जब आपका ध्यान पूरी तरह उस खेल में या उस दोस्त में लग जायगा तो चोट का दर्द नहीं मालूम होगा या

बहुत कम मालूम होगा । दर्द कहाँ मालूम होता है जहाँ आपकी attention (सुरत) होती है । इसी तरह अगर आपको कोई सदमा पहुँचा यानी कोई दोस्त मर गया, या कोई सगा सम्बन्धी मर गया या कोई mentalshock (मानसिक आघात) पहुँचा तो उसे हटाने के लिए जो अभ्यास आपने सत्संग में सीखा है, उसके द्वारा अपनी सुरत को spiritual plane (आत्मा के स्थान) पर ले आइये । mental plane (मंन) में दुख नहीं होगा, और यदि होगा भी तो बहुत हल्का सा होगा। तो, कर्म तो भोगा, जैसा हमने किया वैसा हमें मिला, लेकिन बेमालूम ।

तो जो दरअसल ऊँचे अभ्यासी हैं वे कष्ट भोगते तो हैं लेकिन उसका अनुभव अपने शरीर और मन पर उतना नहीं होने देते जितना सांधारंण मनुष्य को होता है । हमारे ही यहाँ एक सज्जन ऊँचे अभ्यासी थे जिनका किसी चीज का आपरेशन होने को था। उनको chloroform (बेहोश करने की दवा) दी जाने लगी तो उन्होंने डाक्टरों से कहा कि साहब आप मुझे बेहोशी की दवा मत दीजिए । मैं थोड़ी देर concentrate कर लूँ -(सुरत को एकाग्र करके ऊपर चढ़ा लूँ) और जब मेरे शरीर में अमुक लक्षण पैदा हो जाएं तब मेरा आपरेशन कर दीजिए । तो वे अपनी सुरत को mental plane (मन का निचला स्थान जहाँ पर शारीरिक कष्ट का अनुभंव होता है) से ऊँचा उठां कर spiritual plane (आत्मा के स्थान) पर ले गये । यानी अपनी सुरत को आत्मा में जोड़ दिया । जब डाक्टरों ने उनके बताये गये लक्षण शरीर में प्रकट देखे तो उनका आपरेशन कर दिया और उन्हें कोई कष्ट नहीं हुआ ।

यह नित्य प्रति की बातों में भी अनुभव होता है । हमें स्वयें इस बात का कई बार अनुभव हुआ है । मोटर से उतरे हैं और पैर में कोई लोहे का टुकड़ा चुभ गया । कुंछ ऐसा लगा कि चींटी सी चल रही है । घर जाकर देखा तो खाल फट गई थी और खून बह रहा था । जहाँ दर्द ज्यादा हुआ वहाँ अपनी attention (सुरत) को गुरुदेव के चरणों में, ईश्वर के चरणों में लगा दिया, दर्द महसूस भी नहीं हुआ

। तो कया दर्द थोड़े ही चला गया । तो दर्द वाली जगह ही रहा लेकिन जिस चीज़ के द्वारा यानी attention (सुरत) के द्वारा वह अनुभव हो रहा था उसे उस जगह से हटा कर मन के स्थान पर ले गये और वहाँ से और ऊपर उठाकर आत्मा के स्थान पर ले गये ।

इसी तरह के अभ्यास से मनुष्य दुनियाँ के दुखों से भी बच जाता है । life is all happiness, चाहे वह शोरीरिक कष्ट हो या मानसिक कष्ट इस अभ्यास के द्वारा वह दुखी और विचलित नहीं होता ।

हमारे जो पिछले कर्म हैं उनमे से कुछ हिस्सा हमें इस जीवन में मिलता है वही fate (तकदीर) कहलाता है । उसे हम यहाँ भोगते हैं और शेष जो रह जाते हैं, उन्हें संचित कर्म कहतें हैं जो हमें भविष्य में भुगतने हैं क्योंकि एक ही जीवन में हमारे सब के सब पिछले कर्म कट नहीं पाते । जितने कर्म केटने हैं उतने कट जाते हैं, शेष अगले जन्मों के लिए रह जाते हैं । कोई संन्त मिल जाय और मेहरबान हो जाय तो उसकी दुआ से कर्म भार हल्का हो जाता है और आसानी से कट जाता है।

हम सब दुनियाँ में फंसे हुए हैं इसलिए इस हालत में जो दुआ की: जाती है उसका ज्यादा असर नहीं होता । इस तरह से यानी दुनियाँ से अपने मन को साफ़ करके जो दुआ की जाती है उसका असर ज्यादा होता है । जो लोग इन्द्रियों में फँसे हैं और दिखाने के लिए ईश्वर से दुआ कर रहे हैं तो उस दुआं का असर ज्यादा नहीं होता ।

दूसरी बात यह है कि जिन चीज़ों के लिए हम दुआ कर रहे हैं वे चीजें दुनियाँ के पदार्थ हैं तो बे आपको उतने ही मिलेंगे जितनी आपके पिछले जीवन की कमाई है। इससे ज्यादा नहीं मिलेंगे । और अगर ईश्वर की दया उमड़े भी और वे चीज़ें जो आप चाहते हैं, आपको मिल जाएँ (जैसे धन-दौलत,. किसी साँसारिक व्यक्ति का प्रेम, कीति, इत्यादि) तो क्या यह आपके ऊपर ईश्वर की कृपा होगी या उसका आपके साथ में जुल्म होगा ? क्योंकि जितनी ज्यादा दुनियाँ की चीज़ें वह आपको बखशता है

उतनी ही आप की इच्छायें मोटी होती हैं, उतना ही ज़्यादा आप उनमें फँसते हैं । फिर एक इच्छा के बाद दूसरी इच्छाओं का अम्बार लग जाता है । मन कहता है कि "यह और मिल जाय ।" इस तरह से तो आपका कभी भी छुटकारा नहीं होगा । तो ईश्वर ऐसी दुआ को कभी नहीं सुनता । हाँ, जब आप अपनी दुनियाँबी निचली इच्छाओं को छोड़ कर ऊँची दुआ करते हैं उसके प्रेम के लिए तब वह उसको सुनता है । आपकी जो कठिनाइयाँ और मुश्किलें उसके रास्ते में होती हैं उन्हें वह दूर देता है।

वह तो दयालु बाप है । जैसे, कोई माँ है, उसका बच्चा अनजान है और वह चाकु माँगता है, छुरी माँगता है तो क्या वह छूरी दे देगी उसको ? वह जानती है कि इससे वह काट लेगा । लेकिन अगर वह मिठाई के लिए जिद करता है तो वह उसे खाने के लिए दे देती है । ईश्वर तो सच्चा बाप है और ऐसा प्यारा बाप है कि अगर उससे आप ऐसी चीज़ें माँगें जिनसे आपका भविष्य ख़राब हो तो वह आपको नहीं देगा । हम अज्ञान में फंसे हुए हैं । यह नहीं जानते कि हमारा भविष्य किस तरह सुखमय होगा । जो चीज़ हमको अच्छी लगती है, चाहे उससे हमारा भविष्य बिल्कुल सत्यानाश हो जाय, हम तो उसी की इच्छा करते हैं। गुरु कृपा और सत्संग से जब बुद्धि शुद्ध होने लगती है और होश आने लगता है यानी अज्ञान दूर होने लगता है तब पछताता है कि हाय ! मैं किसी बुरी हालत में था । तब वंह खुद ही सोचने लगता है कि मैं जो चीज़ भगवान से माँग रहा था उससे तो मेरा ढेर हो जाता, अच्छा हुआ यह चीज़ मुझको नहीं मिली ।

ईश्वर सब जानता है कि हमारे पिछले कर्म कैसे हैं और आगे के लिये वह हमें क्या दे जिससे हमारी हानि भी न हो और भविष्य उज्वल हो । इसी वास्ते सन्त कहते हैं कि तुम्हारी जो बुद्धि है वह मलिन बुद्धि है । तुम जिस चीज़ में फँसे हो उसी में अपना फ़ायदा समझते हो हालांकि वह तुम्हें नुकसान देने वांली है। ईश्वर इसको खूब समझता है वह ऐसी कार्यवाही करता है जिसके करने से, और उसने

हमें ऐसी जगह रखा है जहाँ रहने से, हमारे पिछले संस्कार भी कट जायें और आगे को हमारा भविष्य better (अच्छा) होता चला जाय। अच्छा होना यहं है कि हमें सुख के धाम की तरफ जहाँ आनन्द ही आनन्द है उस तरफ़ हमारा रुख़ (झुकाव) हो जाय और उस रास्ते पर चलने लगें। उसते हमें ऐसी जगह रखा है और ऐसी चीजे दी हैं कि इसी में हमारा फ़ायदा है । इसीलिये सन्त कहते हैं कि. जिस हालत में भी ईश्वर ने रखा है उसी में cooperate (सहयोग) करो । (यथा लाभ सन्तोष, राज़ी-ब-रज़ा) । इसी में तुम्हारा सबसे ज़्यादा फ़ायदा है । जब मनुष्य की यह धारणा बन जाती है तो उसे peace of mind (मन की शांति) मिलने लगती है ।

(2)

आप दुनियाँ को नहीं बदल सकते । दुनियाँ में तो आपके पिछले संस्कारों के मुताबिक चीज़ें मिलेंगी । जो सजा है वह भी आपको मिलेगी। जो आपके लड़के-बाले रिश्तेदार वगैरा हैं, सब अपनी अपनी तक़दीर और अपने अपने संस्कार भोग रहे हैं । हमें परेशानी इसलिये होती है कि हमें ईश्वर ने जिन circumstances (हालत) में रखा है उसको oppose (विरोध) करते हैं. और उसको curse करते हैं (दोष देते हैं) कि हमको ऐसी हालत में रखा है । दूसरी बात यह कि हम संसार और हमारे रिश्तेदारों लड़कों वगैरा के जीवन को अपंनी इच्छा के अनुसार बदंलना चाहते हैं । यानी हम खुद ख़ुदां बनना चाहते हैं । आप देखेंगे कि आप अपने लड़के को किसी विशेष department (विभाग) में नौकरी दिलाना चाहते थे और वह प्रयत्त आपके असफल रहे और बाद में वह किसी और विभाग में गया तो आप अगर गौर करके देखेंगे तो यह पायेंगे कि उसका भला इसी में था, जहाँ आप चाहते थे वहाँ नहीं । लेकिन आप यह समझते हैं कि हमारे से ज़्यादा बुद्धि किसी की नहीं है, यहाँ तके कि ईश्वर, जिसने हमें बनाया है, और इस संसार में रखा है, उसे भी हम criticise (आलोचना) करते हैं । अपने को उससे भी ज़्यादा अकलमन्द समझते हैं । ऐसा तो

नामुमकित है, ऐसा तो हो 'ही नहीं सकता। इसी वास्ते हम miserable (दुर्दशा में) हैं। अगर हम उससे cooperate (सहयोग) करने लगें और जिस हाल में उसने हम रखा हैं न में खुश रहें और यह समझें कि दरअसल वह हमारा सच्चा बाप है, इसी में हमारी भलाई है।

पहली चीज़ तो यह कि ईश्वर है और अवश्य है, दुसरी यह कि हम यह समझें कि दरअसल वह हमारा सच्चा बाप है, सबसे प्यारा है, वह सबसे ज़्यादा अक्लमन्द है, वह वे सब काम कर रहा है जिसमें हमारा हित ही हित है। यदि आपको यह निश्चय हो जायगा तो जिन circumstances (हालतों) में उसने आपका रखा है. उसमें आप खुश रहेंगे और peace of mind (मन की शान्ति) मिलेगी। जब मन की शान्ति मिलेगी तभी आपका मन अभ्यास में ऊपर की तरफ़ चलेगा। जिस वातावरण में हम इस समय रह रहे हैं अगर हम उसी में फेंसे रहेंगे तो कभी भी इस माया जाल से नहीं निकल सकते। इसलिये जो सत्संगी भाई तरक्की करना चाहते हैं उनको यह चाहिए कि जिस हालत में भी ईश्वर ने रखा है उसी में खुश रहें।

दुनियाँ में तरक्की तो हम कर रहे हैं कि हम बॅरिस्टर हों गये या किसी ऊँचे पद पर नौकर हो गये, और इच्छा यह है कि आगे और उन्नति करें, इसके लिये कोई और पढ़ाई या course करना है जिसके वास्ते कालेज में नाम लिखा लिया है, और ईश्वर ने जो तुमको रुपया या वेतन दिया है उसमें से ज्यादा हिस्सा वहाँ उस पढ़ाई में ख़र्च होता है तो असन्तोष कैसा ? अपना भविष्य बनाने के लिये अगर रुपया दूसरी तरफ़ खर्च कर रहे हो और घर में तंगी हो रही है तो इसमें परेशान हैं। ये तुम्हारी बेवकुफ़ी है या नहीं। भाई अपने भविष्य को बन।ने के लिए ही ईश्वर ने तुम्हें वह हजार रुपये की आमदनी दे रखी है और तुम चाहते हो कि मैं दो हजार रुपये महीने कमाऊँ, और अपना भविष्य बनाने के लिये उसमें पाँच सौ रुपये ख़चे कर देते हो। तो पाँच सौ रुपयों में गुजारा करने में आपको क्यों बुरा लगता है। ये तो होना ही चाहिये। आप अपनी तरक्की के लिये ही तो कर रहे

हैं । आप अपनी आवश्यकताओं को क्यों बढ़ाते चले जा रहे हैं । हालाँकि वेतन काफ़ी मिल रहा है और हमेशा आप रोते रहें, तो ऐसा आदमी क्या तरक्की कर सकता है ?

हमने एक साहब को देखा जो केवल इल्टर या हाई स्कूल पास हैं । इस वक्त में सात सौ रुपये महीने पा रहे हैं । वे, पत्नी और एक बच्चा--इतना परिवार है । आज आठ दस बरस हो गये हमें उनसे मोंहब्बत भी है, मगर आज तक जितनी चिट्ठियाँ आती हैं उनमें यही रोना होता है कि हाय भाई साहब, मेरा गुज़ारा ही नहीं होता, मैं तो मरा जाता हूँ, मैं तो ये किये जाता हूँ । अब बतलाइये कि क्या तुम्हीं रह गये हो कि ईश्वर सारी -दुनियाँ भर का धन तुम्हीं को दे दे । अँग्रेजी तुमको लिखनी नहीं आती । हाईस्कूल पास लड़के क्या अंग्रेजी लिख सकते हैं, मामूली अंग्रेजी लिख पाते हैं । कोई ख़ास तुममें लियाक़त नहीं । कितनी बड़ी ईश्वर की कृपा है कि तुम्हें गज़टेड आफिसर बना दिया और सात सौ या आठ सौ रुपये तनख्वाह मिलती है. लेकिन contement (सन्तोष) नहीं. है। जिनमें contement (सन्तोष) नहीं है, ईश्वर उन्हें भले ही सब कुछ दे दे लेकिन वे तो हमेशा उसकी शिकायत ही करते रहते हैं । ऐसा व्यक्ति क्या परमार्थ पर चल सकता ? कभी नहीं ।

पहली चीज़ यह कि contement (सन्तोष) हो, जिस हालत में हो उसी में खुश रहो -इसी में तुम्हारा भला है । अगर तरक्की करना चाहते हो और दूसरों को देखकर तुम्हारी भी तबियत करती है कि तुम भी रुपया पैसा, शौहरत पैदा करो तरक्की करो तो कोशिश करो मगर सहारा ईश्वर का लो । अगर कामयाबी हो जाती है तो उसको धन्यवाद दो -हे ईश्वर ! तेरी बड़ी कृपा है और अगर नहीं होती है तो भी धन्यवाद दो- हे ईश्वर, बड़ी कृपा है, न मालूम इस जगह पर पहुँच कर मुझे कितनी मुसीबत उठानी पड़ती । आपने बड़ी कृपा की जो मुझे सफलता नहीं दी । इस तरह से कितना satisfaction (उपरामता) आपंको हो जायगा । लेकिन हम अपने आपको कर्ता संमझ कर जब कामयाबी नहीं होती है तो अपने को दोष देते हैं, या तक़दीर को या ईश्वर को । तो

discontement (असन्तोष) हुआ । तो जिस आदमी के मन में discontement (असन्तोष) है क्या वह कभी सुखी रह सकेगा ? कभी नहीं । कितने ही circumstances (हालात) बदल जायें, दुनियाँ की कितनी ही चीज़ें उसे मिल जायें लेकिन उसकी कभी भी तृप्ति नहीं होगी । satisfaction (तृप्ति) दुनियाँ की चीज़ों में नहीं है, वह तो अपने दिल में है । एक व्यक्ति को पचास रुपये महीने मिलते हैं वह satisfied है, एक को पाँच सौ रुपये महीने मिलते हैं, वह फिर भी satisfied (सन्तुष्ट) नहीं है । यह मन की बीमारी है । * इस बीमारी को दूर करो । जिस हालत में ईश्वर ने रखा है उसमें खुश रहो तभी कुछ तरक्की कर सकते हो । मन के स्थान से ऊपर उठकर आत्मा के स्थान पर आ सकते हो । और जो व्यक्ति इन्द्रियभोग में फँसा है, हर वक्त उसी के सोच विचार में फंसा है, उसी की जुगाली करता है, will have ever be a learned man (क्या वह कभी विद्वान-बन सकता है ?) कभी नहीं।

उसकी तो सुरत निचली वांसनाओं में जकड़ी हुई है दिन और रात उसी को सोचता है, बिषय भोग का, आनन्द लेता है और बाकी वक्त में उसी को सोचता रहता है । ऐसा आदमी तो मनुष्य की हैसियत से पशु रूप में गिरता चला जाता । अगर भनुष्य जीवन में उसकी यह हविस पूरी नहीं हुई और निचली वासनाओं में फंसता गया तो ख्वाहिश तो उसकी पूरी होगी लेकिन किसी निकृष्ट योनि में । वहाँ जाओ और उसको भोगो । वहाँ से जब उसकी तृप्ति हो चुकेगी तब फिर मनुष्य चोला मिलेगा । इसी तरह मन की चाहों में बहने वालों का हाल है । सौदागर पेशा लोग तो हर चीज़ की नई से नई डिज़ाइनें लाकर रखते हैं । बाज़ार गये, उस पर निगाह पड़ी--लेने गये थे सब्जी लेकिन अपने मन को न रोक सके और एक सुन्दर सा लैम्प जो दूकान में देखा, मन मोहित हो गया, सब्जी भूल गये और लैम्प ले आये । घर में पहले से ही एक लैम्प मौजूद है, लेकिन आकर्षण-वश दूसरा और ले आये । दूसरी बार सब्जी लेने गये तो एक और अंच्छा-सा नमूना लेम्प का देखा तो उसे भी खरीद लाये । यह सब अनावश्यक खर्चे किया और फिर रोते हैं कि हाय, हमारा खर्च -

पूरी नहीं होता । इंसका ज़िम्मेदार क्या ईश्वर हैं ? इसके तो जुम्मेदार तुम खुद हो । हमारे गुरुदेव एक दिन कहने लगे "श्रीकृष्ण, देखो तुम्हें एक गुर वताते हैं । अगर तुम दुनियाँ में खुश रहना चाहते हो तो अपनी इच्छाओं को कम करते चले जाओ । अगर एंक जूता या दो जूते मौजूद हैं, तीसरा कभी मत ख़रीदो। अगर दो तीन सूट मौजूद हैं तो चौथा पाँचवाँ कभी मत बनवाओ | तुम खुद भी खुशः रहोगे और दूसरों की मदद भी करते रहोगे । और जो तुमने अपनी इच्छाओं को बढ़ाकर अपनी ज़िन्दगी खर्चीली वना ली तो खुद भी दुखी रहोगे और सारे परिवार को दुखी रखोगे, उनकी भंगवान से क्या माँगें आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकते । दूसरी नसीहत यह की कि जो दम तुमसे नसीहत न माँगे, कभी उसको नसीहते मत दो । जाहिरदारी में यह ग़लत सा मालूम देता हैं ।

शेख सादी कहते हैं अगर बीना कि नाबीना व चाह अस्त, बगर खामोश बिनशीनम गुनाह अस्त ।

भावार्थ "अगर देखे कि अन्धा जा रहा हैं और सामने कुआं हैं तो चुप रहना और रास्ता-न बताना पाप हैं ।

मगर गुरुदेव (आचार्य दिगन्त महात्मा रामचन्द्र जी महाराज) ने इसके विपरीत कहा हैं और हमने उसको आजमाया हैं और विल्कुल ठीक पाया हैं । आप ज़वरदस्ती किसी से भलाई के लिये कुछ कहिये तो वह उसे नहीं मानेगा वल्कि उसके खिलाफ़ चलेगा और अपना नुक़सान करेंगा । जब वह आपसे राय माँगें और आप उसे राय देंगे तब उसे वह मानेगा और उसकी क़दर करेगा । चाहे बेटा भी हो, इशारा दे दे, कभी force (जब्र) न करे वर्ना वह कभी वैसा नहीं कर सकेगा | यह दुनियाँ-का एक अजीव क़ायदा हैं कि आप वड़ी मौहब्वत से, उसकी भलाई के लिए किसी को कोई चीज़ बतलायें मगर वह यह समझता हैं कि इन्हें क्या पड़ी हैं, ज़रूर इतका कोई न कोई मतलब हैं जो ये ऐसी बात कर रहे हैं क्योंकि दुनियाँ में सब मतलब से काम कराते हैं ।

आप कितना भी निस्वार्थ होक़र उसे समझायें- लेकिन - वह यही समझेगा कि इसमें तो मेरा बहुत नुक़सान है. खैर, यह मेरा तजुर्बा है । आप चाहें तो इसका' तजुर्वा करके देखलें । लेकिन यह तो खुला हुआ तजुर्वा है कि जितनी आप -अपनी ज़िन्दगी खर्चीली बनायेंगे, उतने ही आप दुखी रहेंगे।

आजकल मँहगाई बहुत है और हर आदमी उससे तंग है लेकिन आप अपने अन्दर से सोच कर देखिए कि क्या हम भी इसके जुम्मेदार नहीं है । हमने भी अपने जीवन को ख़र्चीला बना लिया है । हम यह चाहते हैं कि जिन चीज़ों की ज़रूरत नहीं हैं घर में मौजूद हैं, उनका भी अम्बार लगा रहे हैं। luxaries (विलास की वस्तुयें) necessities (प्रतिदिन की आवश्यक वस्तुओं) में तब्दील होती चली जा रही हैं । जहाँ यह हाल है वहाँ मँहगाई तो बढ़ेगी ही । हम इनके विना रह नहीं सकते । खर्च अपने आप बढ़ता है और हम तंग होते हैं । तो फिर curse (भला बुरा कहना, धिक्कारना) करते हैं। curse किसको करते हैं ? अपने आपको नहीं । बेचारा ईश्वर इस काम के लिये रह गया ।

अपनी आँख का तिल तो नहीं दीखता और दूसरे की आँख में गिरा हुआ छोटे से छोटा तिनका भी दीख जाता है । अपना नुक्स किसी को नहीं दीखता, दूसरे का छोटा सा दोष भी फ़ोरन दीख जाता है । यह मनुष्य. का स्वभाव है । ईश्वर में भी दोष देखते हैं । उसे अन्यायी बताते हैं । कैसे आश्चर्य की वात है । ईश्वर तो सम्पूर्ण न्याय है, और यही नहीं वहं तो बड़ा प्यारा बाप है, बड़ा दयालु है । अगर हमारे कर्मों को देखें कर कि हम क्या-क्या कुकर्म कर रहे हैं, वह हमें सजा दे तो क्या हम दुनियाँ में रहने लायक़ हैं ? न जाने हमारी क्यों दुर्दशा हों । वह माफ़ करता चला जाता है और हम हैं कि उसी को दोषी ठहराते चले जाते हैं । अपने आपको और अपने कर्मों को दोषी नहीं ठहराते । यह miserable (हीन) हालत सब तुम्हारे कर्मों का नतीजा है । जितना किया है उतना तुमको मिल रहा है । कोई चीज़ इसे दुनियाँ में ऐसी नहीं है कि जो विनां कीमत के मिल जाय । जितनी कीमत देते जाओगे, चीज़ मिलती जायगी । कीमत तो देना नहीं चाहते और यह चाहो कि सारी दुनियाँ तुमको मिल जाय । ऐसा तो नहीं होता । वह तो just (न्यायकारी) है, जितना तुमने किया है उतना तुम्हें मिल रहा है । यह सब तुम्हारे ही कर्मों का फल है । चाहे अच्छे हैं या बुरे । उसको हमें सत्र से वर्दाशत करना चाहिये । तभी आपका मन मुक्त होने लगेगा और आत्मा का अनुभव कर सकेगा ।

माया ने यह शरीर बनाया, इन्द्रियाँ व मन वना दिया । यह सव मिट्टी की बनी हुई हैं । जितनी भौतिक चीजें हैं वे भी मिट्टी की वनी हैं, उन पर मुलम्मा चढ़ा है (वे आकर्षक हैं) और उन्हीं की वासनायें हमारे अन्दर भर दी हैं । उन वासनाओं को पूरा करने के लिए हम उन चीजों से attach (लिप्त) हो जाते हैं । यही मन और माया का जाल है । आत्मा का किसी को पता भी नहीं । वह अन्दर दवी पड़ी है, इसलिए अगर हमें सब material (भौतिक) चीजें मिल भी जायें फिर भी हम सुखी नहीं रह सकते क्योंकि आत्मा हमारी अशान्त है, उसको जगाओ । वासनाओं को उतना भोगो जितना ज़रूरी है । यह नहीं कि उनको छोड़ दो क्योंकि जब तक नहीं भोगोगे तव तक मन वहीं लगा रहेगा। लेकिन इसका यह भी मतलव नहीं है कि उसी में फंसे रहो, उन्हें धर्म शास्त्र के मुताविक भोगो | इस तरह भोगने में आप भोग भी लेंगे और इन्द्रियों की तृप्ति भी हो जायगी | जैसे sex की urge (काम वासना) है, सव इसमें फेंसे हुए हैं लेकिन उसका proper (सही स्तेमाल) क्या है ? --आपकी स्त्री । उसको भी धर्मशास्त्र के अनुसार भोगो । इस तरह भोग भी लोगे और तृप्ति भी हो जायगी । अगर आपने उसको अधर्म के साथ भोगा, एक शादी की, दूसरी की, फिर तीसरी की, तो यह ख्वाहिश और बढ़ती चली जायगी । मन जिस चीज़ को ज़्यादा भोगता है उससे वहाँ उसकी जड़ मज़बूत होती चली जाती है । अधर्म से भोगने में वह उस. चीज़ का ऐसा आदी (अभ्यस्त) हो जायगा कि जानवर की दशा में चला जायगा । तो भोगा भी नहीं यानी भोग की तृप्ति भी नहीं हुई और तवाह हो गया । धर्म के अनुसार भोगने से आप उंस भोग से उपराम हो जांयेंगे और उपराम हो जायेंगे तो आपकी attention (सुरत) नीचे से free (मुक्त) हो जायगी। तब आप मन के स्थान से उठकर आत्मा के स्थान पर आ सकते हैं ।

ईश्वर आपका कल्याण करे |

भाव

(सिकन्द्राबाद, ४ जून १९६८)

जो भाव संसारी चित्त में बसा हुआ हैं जिसकी कार्यवाही के लिये साधक का मन धन-दौलत की फिकर में लगा हुआ हैं वह मौजूद रहे और परमार्थ भी बन सके, यह तामुमकिन (असंभव) हैं। संसारी भय, भाव और चिन्ता मन से निकाल देनी होगी । संसार उजाड़ देना होगा । बाहर में कार्यवाही . बन्द कर देने या सब छोड़ देने से मतलब नहीं हैं बल्कि अन्तर में दिल. में जो भाव, भय और चिन्ता संसार की भरी हुई हो उसको दूर कर देना होगा । अन्तर में जिस क़दर संसार का भाव, भय और चिन्ता भरी हुई हैं उसका जरा सा असर बाहर में आता हैं, बाक़ी अन्तर में अम्बार का अम्बार भरा पड़ा हैं जिसकी इस वक्त ख़बर भी नहीं हैं । जिस क़दर उसको दिल से निकाला जायगा उसी क़दर अच्तर में चाल चलेगा और जब पूरा निकल जायगा तब ईश्वर का प्रेम पैदा होगा और तब ही मालिक की नूरानी शक्ल (ज्योतिर्मय रूप) के दर्शन होंगे । इसलिये साधक को चाहिये कि प्रभु प्रेम की बाजी में संसार को दाँव पर लगा दे और हाथ झाड़ कर उठने को तैयार हो जाय । जब सब कुछ झाड़ देगा तभी सब मिलेगा यानी संसार व संसार की वस्तुएं और उनके लिये जो भाव, भय और चिन्ता दिल में बसी हुई हैं उसको हाथ झाड़ कर छोड़ देगा और हार जायगा तब मालिक के प्रेम की दौलत और धन जो कि अपार भण्डार हैं, मिलेगा । मालिक के साथ ऐसा प्रेम का नाता जोड़े जो मालिक ही मिल जावे । वह भक्त जिसने मालिक के प्रेम की बाजी पर संसार को दाँव पर लगा दिया हैं वही ईश्वर की ज्योति की जगमगाहट के दर्शन यानी मालिक के नूरानी रूप के दर्शन प्राप्त कर सकेगा । दुनियाँ के त्याग से कुछ हासिल न होगा जब तक कि संसार का रस दुनियाँ में मौजूद हैं । मलिक के चरणों में पहुँचने के लिये अनुराग सहित वैराग होना चाहिये । जब संसार के झटके खायगा, उनसे दुःखी होकर कोई और रास्ता न पायेगा तब चित्त संसार से

उदास होगा और उपरामता प्राप्त होगी । तभी इस बात की चाह पैदा होगी कि इस बात की तलाश करे कि सच्चा सुख कहाँ है और उसके पाने का क्या साधन है ?

गुरु को जिस भाव से देखोगे वैसा ही लाभ होगा । मनुष्य समझोगे तो मनुष्य का सा लाभ होगा । अगर ईश्वर समझोगे तो ईश्वर का सा लाभ होगा ।

xx *xx* *xx* *xx*

दीन भाव

ता० २०-१-६६

मन में तरंगें उठे तो सुमिरन व भजन करना चाहिए । सुरत को तीसरे तिल में समेटें । दोनों आँखों की रोशनी जहाँ मिलती है वहीं ध्यान करना चाहिये । वहाँ ध्यान जमाने से प्रकाश नज़र आएगा । शब्द भी वहीं पर सुनाई पड़ता है परन्तु वह अन्तर में सुनना चाहिये । गुरु का ध्यान करना स्थूल, व शब्द का सुनना अथवा प्रकाश का देखना सूक्ष्म है । गुरु का ध्यान करते करते जब प्रकाश दिखायी देने लगे, अथवा शब्द सुनाई पड़ने लगे तो फिर ध्यान को छोड़कर उसी को करने लगना चाहिये । अगर प्रकाश देखने या शब्द सुनने के साथ-साथ गुरु का ध्यान भी करते रहें तो चित्त ठिकाने न रहेगा और दोनों में से कोई भी नहीं हो सकेगा । नियमित ढंग से साधन में जब पुष्टता आयेगी तभी शब्द और ध्यान दोनों चल सकते हैं । तस्वीर को सामने रखकर या किसी मूर्ति आदि पर ध्यान नहीं करना चाहिए । अगर गुरु सामने मौजूद हों तो भी उनकी ख्याली शक्ल का ही ध्यान करना चाहिए, हालाँकि यह ख़्याली शक्ल का ध्यान भी स्थूल ही माना जाता है, पर शुरू शुरू के अभ्यासियों को ऐसा करना कठिन होगा। चूँकि आत्मा के केन्द्र में ही परमात्मा है अतः उसका अनुभव हासिल करने के लिए ऐसी हालत पर आना है जहाँ कोई ख्याल न-हो । ध्यान अन्तर में होवे, इसके लिए यह आवश्यक है कि हमारी सुरत (attention) जो अभी बाहरी पदार्थों में लगी हुई है वहाँ से हटे और सिमट कर अन्तर में लौटे । मन की धार यानी संकल्प-विकल्प जब तक शान्त न होंगे तब तक ध्यान पक्का नहीं हो सकता । मन काल का अंश है । यह सुरत को दुनियाँ और दुनियाँवी पदार्थों की तरफ़ बिखेरता रहता है । मन दुनियाँ में सबसे अधिक तीव्र गति वाला और महाचंचल है, कभी शान्त नहीं रह सकता । इसकी उपमा शान्त-प्रशान्त तालाब के जल से दी गयी है। जैसे प्रशान्त जल में हवा चलने से या हल्की से हल्को चीज़ फेंकने पर छोटी छोटी तरंगें उठने लगती हैं वैसे ही इन्द्रियों के प्रभाव से या शरीर के जरा से हिलने मात्र से मन में संकल्प-विकल्प

उठने शुरू हो जाते हैं । योग, यज्ञ, तप, तीर्थ, व्रत, नियम, पूजा इत्यादि जो कुछ भी किये जाते हैं, पहले पहल सब मन को शान्त करने के लिये ही किये जाते हैं । इन तरंगों की रोक-थाम सुमिरन व ध्यान से की जाती है। इसमें भींचा-भीची करनी पड़ती है । मन को वासनाओं से हटाना भींचा-भींची कहलाती है। इसके लिए कम खाना, कम सोना, कम बोलना, एकान्त सेवन और ज़्यादातर समय ध्यान में रत रहने की सलाह संत लोग देते हैं ।

सुख प्राप्ति से मन मोटां होता है । सुख, साधन में महान बाधक होता है । परमात्मां की याद दुख में ही आंती है। इसीलिए दुँखों को परमात्मा की नियामत समझा जाता है । कहा भी है—

सुख के माथे सिल परे, जों नाम हिये सो जाय ।
बलिहारी वा दुःख की, जो पल पल नाम रटाय

मन व माया को कमंज़ोर करने के लिए अपने आपको दीन समझे । जब तक दीनता नहीं आती तब तक आपा नहीं मिटठ्ता । आपा मिटे बगैर आत्मा का साक्षात्कारः नहीं हो सकता और आत्मानुभव के बिनां उद्धार नहीं हीता है । स्वार्थ और परमार्थ साथ साथ नहीं रह सकते । केवल एक ही रह सकेगा । खुदा (ईश्वर) को पाने के लिए खूदी (अहंपने) को निर्मल करना पड़ेगा और वह तभी होगा जब दुनियाँ से सच्चा वैंरराग और गुरु चरणों में अनुराग होगा । बैंराग का यह मतलब कदापि नहीं कि घर-बार, स्त्री, परिवार आदि को छोड़कर जंगल में चला जाय । जंगल में जाने से ही क्या कहीं वैंराग हो सकता है ? शरीर और मन तो वहाँ भी रहेंगे । और जब ये रहेंगे तो इनके व्यवहार भी करने ही पड़ेंगे ।

सच्चे मायने में वैंराग का अर्थ वीतराग होना है, यानी किसी चीज़ में राग (आसक्ति) न हो । शरीर से सब कुछ भोगता हुआ भी किसी चीज़ से लगाव न रहे और न कहीं अटकाव हो । चरणों में अनुराग से मतलंब है कि हर समय अपने को, अपनी सुरत को परमात्मां के चरणों में लगाये रखे

और उसकी मौज में अपने को लय कर दे । इस रास्ते में अनेकों -कंठिनाइयाँ आवेंगी, परन्तु उनसे घंबराये नहीं, धैय पूर्वक गुरु में पूर्ण प्रीति और प्रतीत के साथ उनका बताया हुआ साधन करता जायें । सहायता अवश्य मिलेगी ।

तन का सुख इन्द्रिय सुख, मन का सुख और बुद्धि का सुख - सबको समता में लाकर इष्ट के अर्पण कर दे, अपने आपको पूर्ण रूप से उनके हवाले कर दे । इंसके बाद कुछ करना धरना नही रहता । एक दीन भांव ही उसे निकाल ले जायगा ।

पिछले कर्म और उनके प्रभाव

भाग (१)

(आत्मिक शक्तियों को विकसित करना)

आप कोई बुराई भी नहीं कर रहे, ईश्वर का ध्यान भी कर रहे हैं, तबियत भी लग रही है, बड़ी अच्छी हालत भी चल रही है और एक साथ भूत की तरह से हमें बुरे विचार आकर दबा लेते हैं और कभी-कभी हमसे तदनुसार कर्म भी करा लेते हैं । हम रोते हैं और कहते हैं कि हमें क्या हो गया ? हमसे क्या ग़लती हो गई ग़लती नहीं हुई है यह जो तुम्हारे पिछले कर्म हैं उनका देय है । जो हमारे पुराने कर्म होते हैं वे जमा होते रहते हैं और मौक़ा पाकर हम पर हमला करते हैं और हमें ऐसे पकड़ लेते हैं जैसे पैट्रोल आग को पकड़ लेता है । या जैसे किसी औरत पर भूत आ जाता है । ठीक ठाक बेठी हुई काम कर रही है और एक साथ भूत आया तो जो चाहे सो बक रही है । जब उतर गया तो कुछ पता नहीं । इसी तरह जब कर्मों का वेग आता है तो भले ही कोई काम में ख़राबी नहीं, कोई बुरे ख्याल नहीं, परमात्मा की उपासना रोज़ कर रहे हैं और जो आपके यहाँ के तरीक़ के मुताबिक बातें हैं, वे भी कर रहे हैं – फिर भी हम गिर पड़ते हैं और बुरे विचार हमको खैंचकर ले जाते हैं । उसकी वजह यही है कि पुराने संस्कारों का वेग हमारे ऊपर आया ।

अब उसकी तरकीब क्या बतलाते हैं ? तरकीब यही हैं कि जो अभ्यास आप करते हैं उसमें अपने मालिक को सामने रखकर प्रार्थना करो । अगर सच्चे दिल से मीहब्बत से प्रार्थना कर रहें हो तो ज़रुर फ़र्क़ पड़ेगा चाहे एक साथ न पड़े । फ़र्क क्या पड़ेगा _इस्टरवैल (मध्यान्तर) ज्यादा हो जायेगा । जितनी ज्यादा बेकली होगी उतना ही ज्यादा फ़ायदा होगा और आखिर में आप उस हालत से निकल जायेंगे। इस तरह संचित कर्म जो आपको अगले कई जन्मों में भोगने पड़ते वे थोड़े से

समय में या घंटों में भूगत गये -कितनी कृपा और दया है ? इस तरह पिछले सब संस्कार जो हम जन्म जन्मान्तर में भोगते, एक ही जन्म में भोग लिए जाते हैं ।

मन किस तरह धोखा देता है ?

एक बात और समझ लो । एक आदमी शराब पीता है, उस की लत है तो वह पी रहा है और एक आप पी रहे हैं । उसका शराब पीने के बाद बड़ा आनन्द आता है और तबियत को बड़ी खुशी होती है । तुम में आदत नहीं, है, जबरदस्ती उसम फंस गये हो -शराब पीते हो और रोते हो और चाहते हो कि हे प्रभु, मुझे इस आदत से किसी तरह छुड़ाओ । ज़ार-ज़ार रोते हो लेकिन पी जाते हो । तो कर्म तो करते हो लेकिन उससे वास्ता हटता जाता है । कर्म करने के बाद अगर दुख होता है, अफ़सोस होता है और ईश्वर से प्रार्थना की जाती है तो यह किस लिये है ? तुम्हें उसे दिखला कर उस वक्त भोग कराकर तुम्हें साफ़ किया जा रहा है और किसी वक्त में तुम साफ़ हो जाओगे । जिस बुरे काम के करने में पछतावा न आवे, आनन्द आवे, और फिर करने की इच्छा हो उसकी जड़ मजबूत होंती चली जा रही है और तुम उस में फंसते चले जा रहे हो ।

दुसरी बात यह समझ लो । मान लो इस वक्त शराब की स्वाहिश पैदा हुई लेकिन आपने उसको रोक दिया, अब दुबारा फिर इच्छा पैदा हुई । इस बार ज़रा मुश्किल से रुकेगी । जब हम किसी lower passion (हीन वासना) की ख्वाहिश करते हैं तो जहाँ पर हमारा standing point (बैठक) होता है उससे हम नोचे गिर जाते हैं । यानी जिस केन्द्र पर आप हैं और वहाँ आपको कोई हीन वासना हुई और आपने उसे भोगा, उसके बाद सुरत वहाँ से हट गयी । किसी और काम में लग गये लेकिन आपकी सुरत का कुछ भाग वहाँ रह गया । अगर नहीं रहा तो उसकी याद केसे आयी ? तो जहाँ आपको याद आंती है किसी चीज़ की वहाँ आपकी attention (सुरत) पहले से मौजूद है । या जिस चीज़ को आप शौक़ से करते हैं, और उसमें आन्द आता है तो वहाँ आप पहले से फँसे हुए

हैं । यह शर्त है कि अगर आनन्द नहीं आता है और मजबूरी duty sake (कर्त्व्य मांत्र) करते हैं तो कुछ हर्ज़ नही _ वह चीज़ भूल भी जाती है, लेकिन अगर उसमें आनन्द आता है तो वह चीज़ याद रहती है । आत्मा मन से दंबी रहती है और बहुत ऊँची हालत पर जाकर अलहदा होती है वर्ना throughout (निरन्तर) आत्मा के साथ मन लगा रहता है । सुरत के साथ आत्मा पर मन सवार रहता है । तो जब-जब उस काम को या भोग को किया तो आपकी सुरत का कुछ हिस्सा वहाँ रह गया । फिर जब-जब वही काम बार-बार किया तो थोड़ा-थोड़ा हिस्सां सुरत का उस निचलें स्थान पर (lower passions) पर रहता गया । आहिस्ता-आहिस्ता वह इतना बढ़ जाता है कि वह practical shape (व्यवहारिक रूप) में आ जाता है। अगर शराब की याद आती है और उसका आनन्द पहले ले चुके हैं, तो अपने आप को रोक नहीं सकते, आप शराब पी जायेंगे । जितनी दफ़ा आप शराब पियेंगे उतनी ही दफ़ा आपकी सुरत उस् ऊपर के स्थान पर जहाँ आपकी बैठक थी, वहाँ से उतर कर नीचे आ गई । जब आधे से ज़्यादा आ जायेगी तो यह stationary point (स्थायी बैठक) हो जायगी, शेष सुरत जो ऊपर रह गई है वह भी खिंचकर नीचे आ जायेगी। इसी तरह करते करते आदमी नीचे गिरता चला जाता है। भोग के वाद वह यह समझता है कि ख्याल वहाँ से हट गया । हट नहीं गया, वहाँ तो उसकी जड़ वन गई । जब-जव वह उसको सोचेगा, उस कर्म को करेगा, उसकी सुरत और नीचे को ही गिरती चली जायेगी ।

इसी तरह से just थे opposite (विलकुल इसके विपरीत) जब हम ईश्वर का ध्यान करते हैं, जो अभ्यास अन्दर का हमें बताया गया है उसे करते हैं, तो जितनी देर को हमारी सुरत ऊपर चढ़ती है उतनी देर वहाँ का आनन्द लेते हैं । जब अभ्यास के बाद काम-काज में लग जाते हैं तो हमारी सुरत का कुछ हिस्सा ऊपर रह जाता है । इस तरह से करते करते जब आध से ज़्यादा attention (सुरत) हमारी ऊपर के स्थान पर रह जायेगी तो वहीं हमारी बैठक हो जायेगी । तो

जितंनी बातें आप सोचते हैं और भोगते हैं, चाहे नीचे की तरफ़ को जाओ, चाहे ऊपर को जाओ, हमारी सुरत का कुछ अंश वहाँ रह जाता है ।

जितना आप शौक से खाना खाते हैं और उसकी याद बनी रहती है, आपकी सुरत का कछ हिस्सा वहाँ रह गया । फिर किसी वक्त उसकी याद आपको खींचेगी । आम खाया, बड़ा अच्छा लगा अब उसका नतीजा क्या होगा कि हमारी यह इच्छा होगी कि उसको हम फिर खायें -- बाज़ार से मँगायें। बाज़ार से मँगाया, फिर खाया - अब सुरत उसमें और लग गई । इसी तरह जहाँ-जहाँ हमारी इच्छा होती है वहीं हमारी सुरत चली जाती है, हमारी आत्मा चली जाती है । तो जो सुरत आपकी इधर-उधर ,इच्छाओं और उनकी पूत्ति में बँट गई है, उसे निकाल कर जो नाम मात्र को शेष भाग सुरत का बचा है, क्या उससे आप ईश्वर की प्राप्ति करना चाहते हैं ? नामुमकिन है । कर ही नहीं सकते ।

अपने कर्त्व्य को तो करना ही पड़ेगा मगर लगाव, शौक़, चिपकाव के साथ नहीं । यानी जितने आप वहाँ से हटते जायेंगे उतना ऊपर के केन्द्र की तरफ़ बढ़ेंगे और उसमें आनन्द आता जायेगा । जब आत्मा का आनन्द आने लगेगा तब जो काम भी आप करेंगे, वह duty sake (कर्तव्य मात्र) करेंगे उसमें फँसेंगे नहीं । जिस काम को आप pleasure (मायिक सुख) की ख़ातिर करेंगे वह आपको अपनी तरफ़ खैंचता रहेगा ।

जो शक्ति आपको ईश्वर से मिली है, उसमें से अब तक जो पढ़ाई-लिखाई या और कामों में खर्च हुई है वह एक सौं-वाँ भी भाग नहीं है । बाक़ी सारी की सारी ब्वांशा| latent stage (छिपी हुई हालत) में मौजूद है । उसमें से जो थोड़ा-बहुत खुलां और आपको मिला भी उसको आपने अपनी सेकड़ों इच्छाओं, वासनाओं की पूर्ति में ख़चें कर दिया। तो जो हिस्सा अन्दर की उस शक्ति से निकल कर आपको मिला था, इच्छाओं, वासनाओं में खर्च कर देने के बाद अब आपके पास

उसमें से कितना रहा ? बहुत थोड़ा सा । उसके द्वारा आप मन से लड़ना चाहते हैं कि उसे जीत कर ऊपर के स्थानों में सुरत की चढ़ाई करें । आप कभी भी कामयाब नहीं हो सकते | यह मन बलवान बन चुका है, उसको जीतने के लिये शक्ति बहुत थोड़ी है आपके पास, जब-जब सुरत ऊपर ले जाने की कोशिश क़रेंगे--मन उसे नीचे को खींच लेगा । ऊपर चढ़ाई नहीं करने देगा |

मन के धोखे से कंसे सावधानी करें ?

इसके लिये करना क्या है ? अपनी सुरत को सब जगह से बटोरो । जो दुनियाँ के ज़रूरी काम हैं जैसे नौकरी या तिजारत, बच्चों को पालना, पढ़ाना और अन्य गृहस्थी के काम, उन्हें करो लेकिन बाक़ी वक्त में फ़िजूल बातों में attention (सुरत) को मत बाँटो । जैसे वक्त मिला तो मैगजीन, नावल पढ़ने लगे । यह सब सच्चे किस्से कहानी तो नहीं होते, बनावटी होते हैं, मन के खेल के लिये । उन्हें पढ़ने से तुम्हें आध्यात्मिक फ़ायदा तो हुआ नहीं । उनमें तुम्हारी शक्ति भी नष्ट हुई और attention (सुरत) भी उन्हीं में रह गई । तो इस तरह की चीज़ों में, सिनेमा, नाटक वगैरा में अपनी सुरत को मत बाँटो । उसे बटोर कर centralise (केन्द्रित) कर लो।

फिर सन्तों की संगति में बेठकर ईश्वर को चिन्तन करो और जो शक्ति आपके अन्दर latent stage (छिपी हुई हालत) में है और अभी खुली नहीं है उसका manifestation (प्रकटीकरण) कर दीजिये । बाहर जो सुरंत फैली हुई है उसको भी unite (एकत्रित) कर लीजिये । उससे आप ऊपर को चलिये। तब आपकी आत्मा को बल मिलता जायेगा यानी जिन बातों को आप आसानी से नहीं छोड़ सकते थे उनको अब छोड़ सकेंगे ।

आदमी दुनियाँ भर की तो चीज़ें चाहता है, दुनियाँ भर की इच्छाओं में फंसा हुआ है और अभ्यास भी नहीं करता है जिससे उसकी छिपी हुई शक्ति manifest हो (बाहर आवे) और जो थोड़ी सी रह गई

हैं उससे चाहता हैं कि मेरे ऐब (दोष) दूर हो जायें; ईश्वर की प्राप्ति हो जाय। यह तो- खाली पागलों का ख्याल हैं ये तो हो नहीं सकता।

आपको अपना जीवन ऐसा बनाना होगा कि जो जरुरी चीजें हैं उनको तो करना ही पड़ेगा उनमे तो attention (सुरत) और शक्ति लगेगी ही लेकिन बाक़ी शक्ति क्यों खोई जाय ? जो शक्ति बिखरी हुई हैं उसको एकत्रित करिये और आगे के लिये भीतरी शक्ति का विकास कीजिये ।

सब से भयंकर शत्रु 'काम' से सावधान

सब से ज्यादा गिरावंट sex (कांम वासना) से होती हैं । इसका स्थान बहुत नीचे हैं । जब आप ऊपर का अभ्यास करते हैं तो आपकी सुंरत ऊपर के स्थान पर रहती हैं और विषय भोग करते समय एकदम नीचे गिर जाती हैं । तो जिस सुरंत को ऊपर ले जाने के लिये आपको बरसों लगे थे, वह एक मिनट में नीचे जा गिरती हैं । उसे फिर से ऊपर के स्थान पर ले जाकर वहाँ बेठक बनाने के लिये अगर बरसों नहीं तो महीनों तो जरूर लगेंगे इसलिये जहाँ तक हो इस भोग से अपने आप को बचाना चाहिये।

जहाँ तक औलाद पेदा करना, राष्ट्र को कायम रखने के लिये हैं, वहाँ तक तो विषय भोग- उचित हैं, उसके अलावा जब कभी आपकी भोग वासना प्रबल हो और आप उसको किसी प्रकार भी न रोक सके तो उस समय में आप उसका यदा-कदा भोग कर सकते हैं । परन्तु यदि आप उसको अपनी आदत बना लें और चाहें कि परमार्थ कमा लें तो यह तो एक असम्भव बात हैं । हमारे यहाँ गृहस्थ में ब्रह्मचर्य का मतलव यह नहीं हैं कि आप बिल्कुल – उससे abstinence (त्याग) कर दें। जहाँ तक भी हो जरूरत, के मुताविक़ इस्तेमाल करें, वाक़ी अलहृदा रहें ।

इसी तरह से दुनियाँ की और चीज़ें हैं। खाने की चीजें हैं. - खाना सामने आता है और अगर आप उसमें बहुत स्वादिष्ट चीज़ें चाहते हैं तो आपकी सुरत ऊपर से उतर कर वहाँ आ गई स्वादिष्ट भोजन के चक्कर में फँस गई । मन के साथ आत्मा भी इन्द्रियों के आनन्द भोगने के लिये उतर आती है क्योंकि मन उस पर सवार है । तो जब-जब आप स्वादिष्ट खाना खाते हैं उस का आनन्द लेते हैं तो आपकी सुरत ऊपर के स्थान से उतर कर स्वादेन्द्रिय पर आ जाती है । खाना-तो खाना ही है, साथ-साथ वह पौष्टिक भी हो जिससे शरीर स्वस्थ रहें और ऐसा बेस्वाद भी न हो जिसे आप खा न सके । मगर यह क्या जरूरी है कि ऐसा स्वादिष्ट हो कि केवल स्वाद के लिये ही खाया जाय । इन्द्रियों का भोग जायज (उचित) है मगर इस तरह कि जितने में गुजारा हो जाय और धर्मशास्त्र के मुताबिक़ हो । excess (अत्याधिक्य) में नहीं जाना चाहिये । इस तरह से तों जो energy (शक्ति) हम में मौजूद है उसको हमने waste (व्यर्थ) नहीं किया । फिर जो अभ्यास आपको बताया गया है उसको mental plane (मन-मस्तिष्क) में लाकर हर वक्त उसका ख्याल करते रहें कुछ दिनों में जो शक्ति आप व्यर्थ खो चुके हैं वह centralise (केन्द्रित) हो जायगी । वही concentration (चित्त का एकाग्र करना) है । जिस स्थान पर आपको प्रंकाश का ध्यान करने को बताया गया है वहाँ बार-बार प्रकाश का ध्यान करते रहो तो उससे यह होगा कि जो सुरत और शक्ति आपको इधर-उधर बिखर गई है वह फिर से एकत्रित हो जायगी ।

यह मालूम कैसे होगा ? जो काम या चीज़ें आपसे कभी हुई थीं; जैसे बचपन की अब तक याद है-- इसी तरह आप सोचने लगेंगे कि हाँ, (इस संसार में) मैं आया तो था, परन्तु याद नहीं । जितनी आपकी सुरत नीचे से खिच कर ऊपर की तरफ़ एकाग्रता से बढ़ती जाती है उतनी ही (पिछले जन्मों की) याद आती जाती है । इसी तरह दुनियाँ में भी देखेंगे कि कोई आदमी आपके सामने आया जिसे आपने कभी बहुत पहले देखा होगा - उसे देखते ही याद आयेगी कि इसे देखा है और उसके ज़रा सा बतलाने पर उसे फ़ौरन पहचान जायेंगे ।

इस तरह जितनी शक्ति की आपको अपना जीवन चलाने के लिये ज़रूरत पड़े उतना खर्च करो, बाक़ी जमा रखो-और जो शक्ति इधर-उधर बिखर गई है उसे एकत्रित करो यानी अपनी सूरत को दुनियाँ की चीज़ों से खैंचकर एक जगह केन्द्रित कर लो । इसके साथ-साथ जितनी शक्ति और तुम्हारे अन्दर छिपी हुई है उसको प्रकट करो, उसका विकास करो । जैसे बुद्धि का विकास करने के लिये आप पढ़ते-लिखते हैं इसी तरह उस छिपी हुई शक्ति का विकास करने के लिये ईश्वर का नाम लो । जो आन्तरिक अभ्यास तुम्हें बताया गया है उसे लगातार करते रहो। जब भी, जितनी भी फुरसत हो ईश्वर का नाम लिये जाओ । ऐसे संन्तों की, जिन्होंने अपनी आन्तरिक शक्तियों को जागृत और विकसित कर लिया है, उनकी सौहबत में बेठो | चाहे वे आपसे बात न कर, मगर उनका focus (प्रतिविम्ब) आपके ऊपर पड़ेगा । उनकी आत्मा बन्धनों से आजाद हो कर जागृत और प्रकाशित होकर उभर आई हैं, ईश्वर का प्रेम या ज्ञान जो भी गुण आत्मा के हैं उसी के आनन्द में, उसी के प्रेम में वे मग्न हैं । जब आपका प्रेम उनके साथ होगा तो उसके साथ-साथ उत्तकी आत्मा का प्रकाश भी आपके पास पहुँच जायेगा। तो ऐसे सन्तों की सौहबत में बैठो, उनसे प्यार करो और ईश्वर का नाम लेते रहो तब आप देखेंगे कि आपकी energy (छिपी हुई शक्ति) आंपके अन्दर से निकलती चली आती है। इसकी पहचान क्या है ? जो Subject (विषय) आपको पहले कठिन मालूम होता था वह अब एक निगाह मे साफ़ समझा में आ जायगा। mental plane (बुद्धि के स्थान) पर भी इसका असर पड़ता है | शरीर के अन्दर भी इसका असर पढ़ता है ।

xx – xx

भाग (२)

सन्त की पहचान

जो सन्त हैं, दरअसल सन्त हैं-उनकी पहचान आप लोग तो जानते हैं लेकिन जो लोग नहीं जानते उनके लिये है । जिसके पास जाकर ईश्वर का प्रेम जागे, जो केवल ईश्वरं की ही बातचीत करे; जिसने इस (गुरुआई) को अपना पेशा न बना रखा हो जो व्यभिचारी न हो; इन्द्रियों के भोग से ऊँचा हो; और जिसके आस पास के वातावरण में एक शान्ति का अनुभव हो, ऐसा आदमी दरअसल सन्त है। जो व्यभिचारी है उसके आसपास के वातावरण में जाने से व्यभिचार का ख्याल आयगा । और अगर उसमें ईश्वर प्रेम है और उसने उसे प्राप्त करके दिल में भर लिया है तो इस तरह छलकता है जैसे हौज़ में पानी भरा हो और वह बाहर छलकने लगे । उसके प्रभाव से बाहर भी हरियाली होने लगती है और घास उगने लगती है । तो सन्त जब अपना दिल ईश्वर प्रेम से भर लेता है और लगातार चौबीसों घन्टे भरता ही रहता है तो उसका दिल इतना लबालब हो जाता है कि वह over flow (छलकने) लगता है और जो atmosphere (वातावरण) चारों तरफ होता है उसे saturate (तर) कर देता है । आपके अन्दर feelings (आभास) तो हैं वहाँ जाकर देखिये कि शान्ति आती है या नहीं । अगर उस सन्त के दिल में शान्ति है तो उसके वातावरण में भी शान्ति होगी अगर उसके अन्दर ईश्वर का भाव मौजूद है तो यदि आपके मन में बुरे ख्याल भी होंगे तो वे दब जायेंगे और वहाँ पर जाकर ईश्वर के भाव पैदा होंगे ।

फिर, उसने इसे रोज़ी का साधन न बनाया हो, वह पेट भरने के लिये हराम की कमाई तो नहीं खाता है, किसी के खेरात का तो नहीं खाता है । वह अपने पैसे से, अगर उसके पास हैं या उसकी कोई आमदनी है तो उससे गुजारा करेगा, और अगर उसकी कोई आमंदनी नहीं है तो वह नौकरी करेगा, या व्यवसाय करेगा, मज़दूरी करेगा, लेकिन खैरात का हरगिज नहीं खायगा । खैरात का

खाने से जो उसकी गाढ़ी (आध्यात्मिक) कमाई है उसका ख़ात्मा हो जायेगा _ इन्द्रियों से ऊँचा रहेगा । जिसको आत्मा का अनुभव हो गया है और आत्मा के आनन्द में आ गया है वह इन्द्रियों को क्या भोगेगा। न खाने का शौक़ होगा, न पंहिनने का शौक़ होगा । जो खिला दीजिये वह खालेगा, जो पहना दीजिये वह पहिन लेगा । भोग, अगर उसकी पत्नी है और उधर से ही कोई बात होगी तो वह उसे oblige (तुष्टि) कर देगा वर्ना वह भी कुछ नहीं । जैसे मजबूरी पाखाने में जाते हैं वेसे ही बह भोगों को भोगता है, केवल कर्तव्य मात्र के लिये । उसको उसमें कोई interest (लगाव) नहीं रहता क्योंकि लगाव का जो केन्द्र था वह तो बदल गया। तो जो किताब में लिखा है कि बीज बदल जाता है, वह यह बदल जाता है।

पहले हमारे आनन्द का केन्द्र इन्द्रियाँ थीं । अब हमारे आनन्द का केन्द्र आत्मा का ध्यान या ईश्वर का ध्यान हो गया है और वाक़ी सब कर्त्तव्य मात्र रह गया है और उसमें कोई लगाव नहीं रहा । ऐसे व्यक्ति के पास जाइये, चाहे वह बात करे या न करे, उसके atmosphere (वातावरण) में जाने मात्र से ही आपकी आत्मा पर प्रकाश पड़ेगा । लेकिन आप ये चाहें कि अभी गये और अभी आपकी आत्मा जाग जाय, ऐसा नहीं हो सकता । क्योंकि अभी आपके मन रूपी सागर में बहुत सी desires (तरंग, इच्छायें) हैं। आहिस्ता आहिस्ता उसकाfocus (प्रतिविम्ब) पड़ता है और जो चीज दबी हुई है वह surface (सतह) पर आ जाती है। आपके पास magnet (चुम्बक) है, लोहे के तार नीचे दबे पड़े हैं, अब चुम्बक का असर होगा तो लोहे के तार ऊपर आ जायेंगे । जिसकी जागृत आत्मा है और उसकी association (संगति) हम करते हैं उसके प्रभाव से हमारी आत्मा जो मन और इन्द्रियों से दबी हुई है, वह आसिस्ता-आहिस्ता ऊपर आने लगती है और उसको चेतना होने लगती है।

पहली चेतना यह होती है कि वह यह सोचने लगता है कि मैं दुनियाँ में कहाँ फँसा हुआ हूँ, दुख पर दुख उठाता हूँ और फिर भी उसी चक्कर में फंसा हूँ, यह उसको consciousness (चेंतना) आ जाती

हैं। इसके आने पर वह struggle (संघर्ष) करता है। आदमी इस परिस्थिति में आकर घबरा उठता है। मन तो ले जाता है उसे एक तरफ़, और जब चेतन्यता जाग जाती है तो आत्मा ले जाती है उसे दूसरी तरफ़। दोनों में संग्राम, संघर्ष होता है। इस हालत में अगर उसका कोई सहायक है यानी उसने अगर किसी ऐसे आदमी को अपना दोस्त (गुरु) बना रखा है कि जिसने आत्मा का अनुभव कर लिया है, उसका प्रेम है, तो चाहे वह उसे अपनी हालत की सूचना दे या न दे, सम्पर्क में आये या न आये, जब उसका ख्याल करेगा तो प्रेम की धार उसपर पहुँच कर energy (शक्ति) ले लेगी और मन से लड़ सकेगा। इस तरह आहिस्ता-आहिस्ता आत्मा मन को दबा लेगी। जहाँ आत्मा ने मन को दबाया वहाँ शान्ति आई। जब तक आत्मा में और मन में लड़ाई रहती है संग्राम होता रहता है। संग्राम के अन्दर झकोर पैदा होती है जिससे अभ्यासी घबरा उठता है। कहता है -"साहब, यह तो कुछ नहीं, ख्याल ही ख्याल आ रहे हैं। अरे ख्याल तो आयेंगे ही। ये ख्याल आये कहाँ से ? यह कहीं बाहर से तो नहीं आते। यह ख्याल आपके अन्दर के हैं -दबे हुए पड़े हूँ पिछले जन्मों के। आप कहते हैं कि मैंने तो कभी ऐसा ख्याल भी नहीं किया था। ख्याल नहीं किया था तो आया कहाँ से ? ये जो आप स्वप्न देखते हैं, स्वप्न है क्या ? मन अपना ही रूप देख कर अपने ही विचार बनाता रहता है। जो कर्म कभी किये थे, स्वप्न में उसी का atmosphere (वातावरण) बन जाता है। खुद ही शेर बनता है, खुद ही शिकारी बनता है, खुद ही जंगल बनता है खुद ही परेशान होता है या सुख उठाता है। यह उन्हीं पुराने कर्मों का खेल है। यह खेल खेलता किन चीजों से है ? जो उसके अन्दर औज़ार हैं जिनसे ख्याल उठाये थे उन्हीं से खेलता रहता है। तो स्वप्न क्या हैं - हमारे विचारों का नक़शा है। इससे हमें पहचान होती रहती है कि हमारे ख्यालात कैसे हैं ?

दुनियाँ में पहले तो आंदमी यहाँ की वस्तुओं को भोगता रहता है, उन्हीं में आनन्द लेता रहता है। हमारी भी यही हालत थी। ३०-३४ वर्ष तक तो हम यही संमझते रहे कि पत्नी के साथ आनन्द लेना, बच्चों को खिलाना पिलांना, उनकी परवरिश (पालन पोषण) करना--यही हमारी जिन्दगी का aim

(लक्ष्य) है। हालाँकि हम सन १९१३ में गुरुदेव की शरण में गये थे लेकिन सन १९३०-३२ तक यही चक्कर रहा। उनके सत्संग को सब कुछ असर था मगर वह अभी खुला नहीं था। बच्चा एक साथ तो पैदा नहीं होता ? It takes some month (इसमें कुछ महीने लगते हैं) । वीर्य जाकर womb (गर्भाशय) में irritate (कुरेद पैदा) करता है, placenta (झील्ली) वनाता हैं। आहिस्ता-आहिस्ता गर्भाशय बन्द हो जाता है, फिर समय आता है, नौ महीने के बाद जब (featus) बच्चे का शरोर पूरी तरह बन जाता है तव व बाहर आता है। इसी तरह से गुरु का जो तेज है उसके साथ-साथ ईइवर का प्रेम मौजूद है। तुम चाहते हो कि all at once (एक दम) जाहिर हो जाय। वह तो नहीं होगा। अन्दर जाकर वह brain (मस्तिष्क) में पनपता रहता है। यह भी वीर्य रूप में जाता है। कहने से नहीं जाता है, उसका जो medium (माध्यम) है जाने का, वह है प्रेम। सन्त के मस्तिष्क में या हृदय में ईश्वर का प्रेम है। वह परस्पर प्रेम के द्वारा शिष्य के दिमाग़ -में उतर जाता है। यह इल्म सीना है इल्म सफ़ीना नहीं (आन्तरिक विद्या है मौखिक नही) । मुख से नहीं कहा जाता है। यह तो मन को मन-से उतर जाता है। आत्मा आत्मा को क़बूल कर लेती है। वह जाकर वहाँ पर develop (पोषण) होता रहता है। जब प्रेम develop हो (पनप-) जाता है; तव वह खुलकर बाहर आ जाता है।

तो २०-२२ बरस तक तो कोई सवाल हीं नहीं है। इसके बाद - होश आना शुरू हुआ, फिर struggle (संग्राम) शुरू हो गई। सब तरफ से मन अपनी तरफ खींचता है और संघर्ष चल रंहा - है यह जरूर है कि पहले मन जोतता था, अब आत्मा जीतती है। पहले मन आत्मा को कई कई दिन दवाये रखता था यानी हम अपने मंन की वासनाओं में, इन्द्रियों के भोग में दिनों फंसे रहते थे। लेकिन गुरुदेव की कृपा हुई--आहिस्ता-आहिस्ता यह हुआ कि अगर मन दबा पाता है तो घन्टे दो घन्टे को। फिर आत्मा को अपना होश आ जाता है और अपने इष्ट में जाकर लीन हो जाता है। तो सब सफ़लता एक साथ नहीं होती—by and by (शनैः शनैः) interval (मध्यान्तर) भी बढ़ता

जायगा और intensity (लगाव, तीव्रता) हो बढ़ती जायगी । पहले दो महीने में हमला होता था, अब चार में होने लगेगा। किसी वक्त ईश्वर क्रपा करेगा तो वह स्थायी तौर पर establish (स्थित) हो जायगा आत्मा में या ईइवर में | फिर मन का कोई खटका नहीं. मन बिल्कुल क़ाबू में आ गया। तो या तो शान्ति थी तम में जब बिल्कुल ज्ञान ही नहीं था और या शान्ति हुई तब जब आत्मा ऊपर आ गई और मन दब गया । इन दोनों के बीच के समय में तो struggle (संघर्ष) होगा ही । मान लीजिये आंपकी किसी से लड़ाई हो रही हैं और आपको उसने दबा लिया हैं तो आप निकलने की कोशिश करेंगे, कभी आप उसे दबायेंगे और कभी वह आपको दबा लेगा। जब आप उसको पूरी तरह दबा लेंगे कि वह उठ ही न सके तब आपको चेन मिलेगा, और जब तक लड़ाई रहेगी तब तक संघर्ष चलता ही रहेगा । इसी तरह अभ्यास की अवस्था में कभी मन जीतता हैं, कभी आत्मा जीतती हैं । शुरू-शुरू में हमेशा मन ही जीतता रहता हैं । लेकिन एक दफे आत्मा जाग कर फिर दब नहीं जायगी । थोड़े दिनों के लिये दब जाती हैं लेकिन फिर खड़ी हो जाती हैं लड़ने के लिये । जब तक वह मन को पूरी तरहं दबा नहीं लेगी और "जीत नहीं जायगी तब तक बराबर संघर्ष करती रहेगी । इस रास्ते में थक थका कर बेठना ही ग़लत हैं । जब तक आत्मा पूरी तरह नहीं जीतेगी तब तक गिरना तो होगा ही--मन बड़ा ताकतवर हैं। इसने इस पिण्ड (देह), ब्रह्माण्ड, पारब्रह्म और तमाम दुनियाँ को भ्रमा रखा हैं। हमारी क्या ताक़त हैं जो इससे जीत सकें, लेकिन ईश्वर से ताक़त (शक्ति) लो, और लड़ते रहो, भले ही पिटते रहो और ऐसी हिम्मत रखो कि अब की मारे तब जाने । फिर पीटेगा, फिर गिरोगे लेकिन एक दिन ऐसा आ जायगा कि आप उस पर काबू कर लेंगे । जहाँ एक दफ़ा क़ाबू किया तो कुछ तो self confidence (आत्म-विश्वास) आ जाता हैं और कुछ ईश्वर कृपा। लेकिन बिना ईइवर की क्रपा के यह संग्राम आप जीत नहीं सकते । क्यों ? मन किसका बेटा हैं ? यह काल का पुत्र हैं । इससे लड़ने के लिये आत्मा जब तक अपना पिता जो आदि-पुरुष हैं, दयाल पुरुष हैं, परमात्मा हैं, का सहारा नहीं लेगी तब तक काल के पुत्र मन को

पंराजित नहीं कर सकती । तो गुरु के माध्यम से दयाल पुरुष से सम्बन्ध पैदा कर लेना चाहिये । जहाँ सम्बन्ध पैदा हुआ, फिर मन और काल दोनों शान्त हो जाते हैं और फिर कभी नहीं लड़ते । फिर माँ (माया) छोड़ देती है । दुर्गा को ही काल कहते हैं । मुसलमान सूफी इसी को शैंतान कहते हैं और दयाल पुरुष को रहमान कहते हैं। दोनों शक्तियाँ उस आदि पुरुष से निकलती हैं । पहली शक्ति निकली है दयाल पुरुष से, उससे नीचे की शक्ति काल पुरुष से निकलती है। दयाल पुरुष से आत्मा निकली और काल पुरुष से मन निकला । अगर हर वक्त आपके साथ है तो यह आपकी हर वक्त की मुख़बिरी काल से करेगा । उसकी लगातार यह कोशिश रहती है कि यह ईश्वर की तरफ़ न जाने पाये। जितना सोच विचार इन्सान करता है वह सब दुनियाँ में ही फेसाने वाला होता है। निकलने की कोशिश नहीं करता । आत्मा दयाल पुरुष का अंश है। जब यह जागृत अवस्था में आ जाती है फिर यह मन के चंगुल से निकलने की कोशिश करती है । तब दोनों में संग्राम होता है । मन दुनियाँ में फेंसाना चाहता है--आत्मा दुनियाँ से निकलना – चाहती है । जब आत्मा का सम्बन्ध ईदवर से हो जाता है तो काल हमेशा के लिये दब जाता है, आत्मा आजाद (मुक्त) हो जाती है और ईश्वर से मिल कर एक हो जाती है । यही जीवन का ध्येय है । जागृत अवस्था में आकर struggle (संघर्ष) करो ? गिरते हो, को ई हज नहीं लेकिन अगर रास्ते पर क़ायम रहोंगे और चलते रहोगे तो एक दिन ज़रूर कामयावी होगी । और अगर थक कर रुक गये तो जो कुछ अभ्यास किया है वह निरर्थक नहीं जायगा लेकिन जैसा कृष्ण भगवान कहते हैं, अगले जन्म में फिर शुरुआत होगी और मुमकिन है कि उस जन्म में मन उसको - बिल्कुल ही दबा ले। लेकिन जिन्होंने अपना सम्बन्ध (नाता) दयाल पुरुष से किसी medium (माध्यम, गुरु) के द्वारा जोड़ लिया है. उसको बराबर सहारा और मदद मिलती रहती है वह फंसता नहीं और सम्भव है कि वह एक जन्म में भी भवसागर से पार निकल जाय ।

सर्वप्रथम कर्तव्य क्या है ?

समर्पण क्या है?

(टेप का अंश)

आप कोई काम अपनी इच्छा से करते हैं और उससे वह इच्छा भी पूरी करते हैं--वहां अच्छा लगेगा । यह संस्कार कमाना है । जब आपने सब कुछ सुपुर्द कर दिया ईश्वर के--अब उसके आसरे बैठे हुए हैं । जो कुछ हो रहा है ठीक हो रहा है, जो होगा _वह भी ठीक होगा । यह समर्पण हो गया । तो जब समर्पण हो गया और आप अपनी किसी इच्छा से काम करते ही नहीं हैं तो संस्कार कहाँ से बनेंगे ? अगर आप अपने आप को कर्त्ता समझते हैं और प्रयत्न भी कर रहे हैं तो आप कर्त्ता तो बन ही गये चाहे वह काम होने को हो या न हो । इस बात को छोड़िये । तो जब आप कर्त्ता हैं और उसके लिए पुरुषार्थ कर रहे हैं तो उसकां फल भी मिलेगा ही । इस तरह कर्म बना आगे को ।

सुपुरों मतो माओ खेशरा,
तृ ज्ञाने हिफ़ाज़त कंसो बेशरा।._

भावार्थः--मैंने तो अपने आप को पूर्ण रूप से ईश्वर के सुपुर्द कर दिया । अब वह चाहे कम दे या ज़्यादा दे, वह जुम्मेदार है-- मैं कुछ नहीं चाहता । जो उसकी मर्जी में आये वह करे।

गीता में आप पढ़ें तो अर्जुन को श्रीकृष्ण भगवान बराबर समझाते चले गये हैं । सब तरह के तरीक़े बताये हैं सब प्रकार के योग बतलाये हैं । अष्टांग योग, वेदान्त, सनन्यास इत्यादि, इत्यादि ।

सब समझाते चले गये हैं। सबसे अन्त में कहते हैं - "ऐ अर्जुन ! अगर तू यह भी नहीं कर सकता, वह भी नहीं कर सकता तो तू मेरा सच्चा दोस्त है, मैं तुझे एक राज़ (गोपनीय बात) बतलाता हूँ । तू सब कर्मों को छोड़कर मेरी शरण में आजा यानी surrender to me (मेरी शरणागत हो जा) मैं तुझे यक़ीन दिलाता हूँ कि मैं तुझे भवसागर से पार कर दूँगा"।

तो कृष्ण कौन हैं ? ईश्वर । और अर्जुन कौन हैं ? aspirent (जिज्ञासु) जो अभ्यासी है । सबसे foremost duty (मुख्य कर्त्व्य) क्या है ? इसे समझीये । इस वक्त आप कर्तव्य क्या समझ रहे हैं - दुनियाँ में तरक्की करना । या कर्तव्य यह समझ रहे हैं कि अपने परिवार, बाल बच्चों का पालन पोषण करना, लड़की की शादी करना या कोई और सांसारिक कर्तव्य । तो यह duty (कर्तव्य) तो हैं मगर यह किस के कतंव्य हैं ? यह आपकी स्थूल देह से ही तो ताल्लुक़ रखते हैं । कल को देह न रही तो यह कर्तव्य कैसे होंगे ? लेकिन आत्मा तो हजारों बरस से मन के चंगुल में फंसी हुई है, जो हमें सच्चा आनन्द देने वाली है, उसकी तरफ़ क्या कोई कतंव्य नहीं है ? किसी साधारण मित्र के

सर्व गृह्यतमं भूयः श्णु में परम बचः

इग्तोऽसि में दुढ़मिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ॥६४॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी माँ नर्मस्कुरु ।

मामेवेष्यासि सत्य ते प्रतिजाने प्रयोऽसि में ॥॥६५॥

सर्वधर्मान्य परित्यज्य मामेक शरण ब्रज ।

अहं त्वा सर्वपापेम्णों मोक्षयिष्यांमि मा शुचचः ॥६६

लिए कोई किसी साधारण मित्र के लिए कोई काम कर देना तो हम कर्तव्य समझते हैं लेकिन अपनी चिरकाल से बन्धन में फंसी हुई आत्मा को मुक्त करने के लिए हमें जो यह मनुष्य शरीर मिला है भविष्य में फिर यह शरीर मिले न मिले-- उसके लिए हमारी क्या कोई duty (कर्तव्य) नहीं है ? हमारे मन में जो दुनियाँ की इच्छायें उठतीं हैं उन्हें पूरा करना हम अपनी ड्यूटी समझते हैं । मान लीजिये कि आपके मन में यह ख्याल आता है कि हमारा बेटा नाराज़ है, लाओ उसे खुश कर लें । लेकिन यह कितने दिनों के लिये ? क्या वह हमेशा खुश

रहेगा ? अगर वह नाराज़ हैं तो, और खुश हैं तो आपकी foremost duty (सर्वप्रथम कर्तव्य) यह हैं कि आपकी आत्मा जो मन की दुनिया में फंस गई हैं उसको आजाद करायें । और इस काम के लिए जीवन कितना शेष हैं ? इसका किसी को क्या पता ? किसी की अपनी मौत का पता नहीं हैं - न मालूम कब आ जाय । तो आदमी यह सोचता हैं कि दुनियाँ की और सब ड्यूटी तो उसकी हैं लेकिन अपनी आत्मा को मन के चंगुल से आजाद कराने को ड्यूटी उस की नहीं हैं ।

कृष्ण भगवान कहते हैं कि अपनी आत्मा को मेरे समर्पण कर दो यानी सर्वप्रथम कर्तव्य वह यही बतलाते हैं कि अपने आप को पूरी तरह उनके समर्पण कर दो और तुम्हारे सब काम वे पूरा कर देंगे । हम हज़ारों दफा गीता पढ़ते हैं लेकिन अपने मन के मुताबिक़ उसका ऐसा मतलब निकाल लेते हैं जिससे दुनियाँ के मोह और माया में फंसा रहें । सर्वप्रथम कर्तव्य आपका यह हैं कि ईश्वर की याद करो और दुनियाँ के जितने कत्तंब्य हैं उन्हें secondary (गौण) समझो । और जब तुम उन सबको पूरा कर जाओ तो अपनी इस ड्यूटी को भी छोड़ कर अलहदा हो जाओ-- सम्पूर्ण समर्पण। समर्पण का मतलब यह हैं कि तुम्हारी कोई इच्छा शेष न रहे--अपने को कर्त्ता न समझो, दृष्टा समझो | यह दुनियाँ एक सिनेमा हो रहा हैं । शिव भगवान शक्ति के साथ ताण्डव नृत्य कर रहे हैं - खेल हो रहा हैं । उसको देखों और जो पार्ट तुमको दिया गया हैं उसको अदा करो । तुम दूसरे के पार्ट में क्यों दखल देते हो यह तो प्रकृति माँ खेल खेल रही हैं । यह दुनियाँ किसकी हैं ? क्या तुमने बनाई हैं ? क्या तुम यहाँ अपनी मर्जी से आये थे ।

लाई हयात आऐं, क़ज़ा ले चली, चले । अपनी खुशी न आये, न अपनी ख़ुशी चले ॥

हमें तो एक पार्ट अदा करने के लिये इस दुनियाँ में भेज दिया गया है और माँ अपना खेल खेल रही है । तुम अपना पार्ट अदा करते रहो । ईश्वर का ध्यान रखो और शिव भगवान का जो खे हो रहा है उसे देखते चलो ।

याद रखो, आदी को ईश्वर ने फाँसा है. (यहाँ जन्म देकर) और ईइवर ही निकालेगा लेकिन फंसते हम खुद हैं क्योंकि हम अपनी इच्छायें पेदा करते हैं । जिस हालत में उसने रखा है हमें उसी हालत में खुश रहना चाहिये - यही दीनता है । अंगर आपकें कोई इच्छा उठती है और उसे पूरा करना चाहते हो तो उसी (ईश्वर) का आसरा लेकर पूरी करों और यदि पूरी न हो तो भी खुश रहो | यह भी समर्पण में आ जाता है । अपनी इच्छायें उठाना और अपने आपको कर्त्ता समझना-यह समर्पण कहाँ हैं ? जहाँ समर्पण है वहाँ कर्म कहाँ है ? जहाँ कर्म नहीं है वहाँ बदला कहाँ है ? कर्म कहाँ से पैदा होता है--इच्छाओं सें । जंब किसी वस्तु और की इच्छा होती है तो हम कर्म करते हैं और जब वह हमें प्राप्त हो जाती है तो उसे अपना समझने लगते हैं और जब प्राप्त नहीं होती तो दुखी होते हैं । प्राप्ति हो जाने पर भी हम यह ख्याल करते रहते हैं कि न मालूम यह चीज़ हम से कब छूट जायगी । यानी हर हालत में उसी का ख़्याल रहता है । उससे attachment (मोह) हो जाता है यानी उसमें फंस जाते हैं । अगर इच्छा ने उठ और किसी वस्तु की प्राप्ति हो जाय तो यह समझो कि यह मेरी नहीं है, भगंवान् जब चाहेगा ले लेगा । तो attachment (मोह) कहाँ हुआ ? इस तरह से रहो - दुनियाँ उसकी समको-उसको देखते रहो (दृष्टा बनो) । हर चीज़ यहाँ उसकी है, तुम भी उसी के हों, तुम्हारा शरीर भी उसी का है, तुम को कोई पार्ट अदा करने को दिया है, अपनी शुद्ध वृद्धि और सच्चे दिल से उसको अदां करते रहो । क्या होगा ? मैं क्या जान ? क्या किसी चीज़ का फल तुम्हारे काबू में है ? तुम कर सकते हो काम को, सो किये जाओ । नतीजा तो वह जाने, क्या होगा ? सब उस पर छोड़ दो । यह समपंण है ।

सर्वप्रथम कर्तव्य जहाँ समर्पण है वहाँ इच्छा नहीं होती । जहाँ इच्छा नहीं वहाँ कर्म नहीं जहाँ कर्म नहीं वहाँ आवागमन नहीं । जितने महापुरुष हुए हैं सबने यही कहा है कि अपनी कोई इच्छा मत रखो। बुद्ध भगवान् ने भी यही कहा है कि इच्छायें ही सब (बन्धन) की जड़ हैं । और जो इच्छाओं से ऊपर उठ गया, यही मन को जीतना है। जिसने इसको जीत लिया उसने दुनियाँ को जीत लिया उसका आवागमन ख़तम हो गया। इसी का नाम मोक्ष है। मोक्ष का मतलब है मुक्त हो जाना । काहे से ? सारी इच्छाओं से । इसके बाद में आनन्द ही आनन्द है और उसके बाद में है हमेशा-हमेशा के लिये उसमें लय हो जाना। मोक्ष का मतलब ईश्वर में लय हो जाना नहीं है "इसका मतलब है free from desires (इच्छाओं से आजाद हो जाना इच्छा रहित हो जाना) ।

मेरे गुरुदेव ने एक बार मेरे लिये कहा था कि मैंने इस शख्स को (मुझे) मोक्ष दे दी । हमें इस बात का ख्याल भी नहीं था । हमारे एक गुरु भाई ने हमें बताया कि यह बात उन्होंने अपने रजिस्टर में दर्ज कर रखी है ।

परमात्मा से कुछ मत माँगो । माँगो तो उसका प्रेम माँगो । हालाँकि यह भी नहीं माँगना चाहिये । हरि इच्छा जो आपकी मर्ज़ी हो वही हो । सबसे ऊँची प्रार्थना यही है । हे प्रभू ! आपकी इच्छा पूर्ण हो । अगर मुझे नरक में रखना चाहते हो तो बहुत अच्छा - केवल आपकी याद बनी रहे । मुझे न दीन (परलोक) चाहिये न दुनियाँ । उसका प्यार बना रहे, उसकी याद बनी रहे - अंगर कोई इच्छा हो भी तो यह हो । इस दुनियाँ का क्या माँगना-यह तो तबाह (नष्ट) होनी ही है । हम माँगें- कि हमें एक लाख रुपया मिल जाय । मिल भी गया और कल को मौत हो गई तो फिर उसको भोगने के लिये ही आयेंगे । तो ऐसी चीज़ माँगें जो हमेशा हमारे साथ रहे मरने पर भी हमारे साथ रहे ।

ईश्वर से सिवाय उसके प्रेम के और कुछ मत माँगो, चाहे दे न दे । अगर सच्चे दिल से तुम उसका प्यार माँगते हो तो तुम को देगा और इससे तुम्हारा वह भला होगा जिसका तुम को ख्याल भी नहीं है ।

हर व्यक्ति अपने-अपने मत का प्रचार करता है लेकिन जिस तरीक़े को आपने अपनाया है उसी को पकड़े रहो जब तक आत्मा का ज्ञान न हो जाय । इसके बाद तुम्हें अधिकार है कि चाहे खामोश होकर बैठ जाओ और चाहे और तरीको को देख-लो ।

मनुष्य के जीवन का ध्येय

संतों की सौहबत से तथा उनकी कृपा से और भोगों के नतीजों से, दुनियाँ की बेसबाती (नाशवानता) और उसकी असलियत (वास्तविकता) ज़ाहिर (प्रकट) होती है ।

दुनियाँ की बेसबाती (नश्वरता) का अनुभव तब होता है जब साधक दुनियाँ से उपराम हो जाता है और भोगों से बेजार हो (ऊब) जाता है । बेज़ार होकर निकलने की कोशिश करता है । जब अपनी कोशिश से नाकामयाब (असफ़ल) होता है, तब गुरु की ज़रूरत महसूस करता है और उसकी तलाश करता है ।

गुरु के मिल जाने पर साधक उससे प्रेम करता है और उसको ज्ञान प्राप्त होता है, धीरे-धीरे उनके हुक्मों (आदेशों) पर चल कर उनमें अपनी फ़नाइयत (लय) हासिल कर लेता है । जितनी फ़नाइयत हो जाती है, साधक दुनियाँ के भोगों से उतना ही बेज़ार हो जाता है और प्रकाश तथा शब्द जाहिर होने लगते हैं, जिन का आनन्द हासिल होने से दुनियाँ से और ज़्यादा बेजार हो जाता है । शब्द और प्रकाश के अभ्यास से धीरे-धीरे आत्मा की हक़ीक़त (वास्तविकता) खुलने लगती है ।

जितनी आत्मा मन के फंदों से निकलती जाती है उतना ही अनामी पुरुष के लिए प्रेम जागने लगता है । जितना प्रेम बढ़ता जाता है उतनी ही आत्मा सत्पुरुष में लय होती जाती है । आत्मा सतपुरुष में लय होकर ज़िन्दा (जीवित) रहती है । यही असली रूहानी जिन्दगी है, यही निर्वाण पद है ।

ऊपर के बयान से हर व्यक्ति जान सकता है कि वह किस अवस्था से गुज़र रहा है, उसने कितना रास्ता तय कर लिया है और कितना बाक़ी है । यही जानना इन्सानी ज़िन्दगी का मकसद (ध्येय) है।

अन्ध-विश्वास

प्रारम्भ में हर काम में, चाहे वह दुनियाँ के सम्बन्ध में हो या ईश्वर की प्रोप्ति के लिये हो, अन्धविश्वास से ही काम लिया जाता है। जो माँ बाप कहते हैं, उनका बच्चा उस पर विश्वास करता है और उसको सच समझ कर कार्य करता है, यह अन्धविश्वास ही है क्योंकि वह यह नहीं जानता कि जो उसके माँ बाप कह रहे हैं, वह सच है या ग़लत लेकिन वह उसको सच ही मानता है और आगे चलकर बुद्धि से सच था झूंठ होने का निश्चय करता है। एक विद्यार्थी को भूगोल का अध्यापक बतलाता है कि दुनियाँ सूरज के चारों तरफ घूमती है । वह उसको सही मान लेता है और आगे चलकर बुद्धि से इसका निर्णय करता है । इसी तरह दुनियाँ के हर काम में दूसरे लोगों की बांत पर विश्वास किया जाता है और बुद्धि से उसका -निशुचय किया जाता है । परमार्थ में भी जो गुरुजन कह गये हैं और किताबों में जो लिखा है या जो मौजूदा (वतंमान) गुरु कहता है, उस पर यक़ीन करके अभ्यास शुरू किया जाता है।और आगे चलकर बुद्धि से काम लेकर उसकी सचाई और झूठाई की परख करता है । अगर कोई व्यक्ति यह चाहे कि पहले उसको बुद्धि से आत्मा या ईश्वर का अनुभव करा दिया जाय तभी वह अभ्यास शुरू करेगा, तो कभी भी – ऐसा आदमी अभ्यास नहीं

कर सकेगा । शुरू में गुरु के कहने ' पर यक़ीन करके अभ्यास शुरू कर देना चाहिए । बाद में बुद्धि से निर्णय करना चाहिए कि रास्ता सही है या ग़लत ।

इसी तरह से अगर कोई आदमी जो बात शुरू में बतलाई गई है, उसी को पकड़े हुए हैं और बुद्धि से काम नहीं लेता तो आगे की तरक्की रुक जायगी और उसमें कट्टरपन आ जायगा । अपने तरीक़े को सही समझ कर बाक़ी सबको ग़लत समझेगा और सबसे लड़ता फिरेगा । इसलिए हर मामले में शुरू में दिल से काम लेकर गुरु की बात पर यक़ीन करके श्रद्धा से काम करना चाहिए और साथ ही साथ बुद्धि से सोचते समझते चलना चाहिए। तभी कामयाबी (सफलता) होगी । यानी, मन और बुद्धि दोनों को साथ लेकर चलना चाहिए। जब तक रथ के दो पहिए एक साथ मिलकर नहीं चलेंगे, तो रास्ता ते ही नहीं होगा और जहाँ से चला था वहीं पड़ा रहेगा, या रास्ता बड़ी देर में तय होगा ।

गंगा बह रही है और पहाड़ों, मैदानों, जंगलों से गुजरती हुई आख़िर में समुद्र में जा मिलती है । यही उसकी जिन्दगी को लक्ष्य है । वह इस बात की परवाह नहीं करती कि उसमें आदमी नहाते हैं या उसमें कपड़े धोए जाते हैं या उसमें मलसूत्र डाले जा रहे हैं । उसको इसका ख्याल नहीं है । वह् तो बड़ी तेजी से हर-हर' शब्द करती हुई अपने प्रीतम से मिलने के लिए चली जा रही है । सूरज चमक रहा है, सभी पर उसका प्रकाश पड़ रहा है, और उसका जौहर (तेज) खुल रहा है, चाहे फूल की खुशबू हो या विष्टा की गन्ध वह अपनी जिन्दगी के आदर्श में कर्तव्यरत है । इसी तरह भक्त को चाहिए कि अपने भगवन्त की तरफ हर ओर से निगाह हटाकर चलता रहे । और हर बाधा को रास्ते से हटाता जाए । लोग इससे फ़ायदा उठाते हैं या नहीं, उसकी बात सुनते हैं या नहीं या बुरा भला कहते हैं, इन बातों की तरफ दृष्टि नहीं करनी चाहिए और जो काम उसको ईश्वर ने सुपुर्द किया है, ईश्वर का सहारा लेकर, उसको अपने साथ लेकर करते रहना चाहिए । इसी तरह प्रत्येक आदमी को

दुनियाँ में जो काम ईश्वर ने सुपुर्द किया है उसको ईश्वर का काम समझ कर सच्ची लगन और सच्चाई के साथ करते रहना चाहिए और साथ ही इस ख्याल को बिल्कुल भुला देना चाहिए कि इसका हमको क्या नतीजा मिलेगा । काम करना हमारे हाथ में है और उसको करते रहना हमारा कर्तव्य है । नतीजा उसके हाथ में है । इससे काम की कीमत हजारों गुनी बढ़ जाती है और इसके बदले में ईश्वर का प्रेम मिलता है । अगर उसका काम रुपया हासिल करना और किसी काम में ख़र्च करना है तो उसंकी कीमत बहुत घट जाती है और कुछ दिनों बाद वह चीज भी हाथ से जाती रहती है । इसके विपरीत यदि ईश्वर को खुश रखने के लिए पूरी सचाई से जो भी काम हो, उसका समझ करं किया जाता है तो उससे ईश्वर का प्यार मिलता है, जिसकी क़ीमत का अन्दाजा किया ही नहीं जा सकता है, जो हमेशा-हमेशा साथ रहता है, नाश नहीं होता । इसलिए हर आदमी चाहे वह दुरनियाँदार हो या भक्त हो, जो काम ईश्वर ने उसको दिया है अपने आपको सेवक समझे कर अपने मालिक परमात्मा को खुश करने के लिए बड़ी संच्चाई और शौक़ से करना चाहिएं । इससे उसको बड़ी शान्ति नसीब (प्राप्त) होगी

xx – xx

परमार्थ में कामयाबी हासिल करने के लिए जरिये ।

नवम्बर १९६९ में गोरखपुर में महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी महाराज द्वारा लिखाया गया ।

परमार्थ यानी अपनी आत्मा का अनुभव करने के लिये या ईश्वर का साक्षात्कार करने के लिये या हमेशा कां सुख हासिल करने, दुख से निवृत्ति हासिल करने के लिए दो चीज़ों की सख्त ज़रूरत है। जितने काम हम करते हैं या तो दिल (मन) की ख्वाहिश के मुताबिक़ या बुद्धि के सुझाव से करते हैं । इन दोनों का शुद्ध होना ज़रूरी है । जब तक ज़िन्दगी के ये दोनों पहिये सही हे तौर पर और साथ साथ नहीं चलेंगे जिन्दगी का सफ़र या तो मुश्किल से या बड़ी मुद्दत में तय होगा । और यह भी मुमकित है कि जन्मों चक्कर खाते रहें और कामयाबी हासिल न हो ।

शुद्ध मन से मतलब यह है कि उसको ईश्वर से लगाव हो और तलाश करके उसको सतगुरु मिल गया हो और उससे उसको प्रीति हो गई हो । शुद्ध बुद्धि से यह मतलब है कि बुद्धि में दुनियाँ की नाशवानता देखकर सच्चाई यानी हमेशा रहने वाली चीज़ की तलाश हो और दुनियाँ से उपराम हो गया हो । जब तक यह दोनों चीज़ें न होंगी इस दुनियाँ के प्रपंच से छुटना नामुमकिन है । अगर हमको सच्चा गुरु मिल जाय और हमें उसमें सच्चा विश्वास हो जाय और हम उसके आदेशों पर चलें तो अपने लक्ष्य पर पहुँच जायेंगे । और अगर सच्चा गुरु तो मिल जाय मगर उसमें सच्चा विश्वास और प्रेम न हो और कर्म और रहनी सहनी उसके कहने के मुताबिक न बनावें तो कामयावी नामुमकिन सी हो जाती है और अगर हम उस शुद्ध बुद्धि से दुनियाँ की नाशवानता पर ध्यान देकर जो चीज़ें नाशवान हैं और जिनमें सुख सिर्फ़ जाहिरदारी का है और दुख भरा पड़ा है, छाँट-छाँट कर सच्चाई की तरफ़ नहीं चलते हैं तो भी कामयाबी नामुमकिन हो जाती है, क्योंकि इस रास्ते में हर क़दम पर बड़े भयानक (काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहँकार आदि) जानवर हर समय मुँह खोले निगलने को तेयार हैं । इसलिए रास्ते के जानने वाले (गुरु) की जरूरत है जो हमारी हिफ़ाज़त

करता जाय वरना मुमकिन है किसी चक्कर में फँसकर यह जन्म व्यर्थ कर दें । इसलिए जो मुतलाशी (जिज्ञासु) इस बात के हैं कि उनको हमेशा-हमेशा के दुःख से निवृत्ति हो जाय और हमेशा का सुख मिले उनको चाहिये कि जब तक सच्चा गुरु न मिले तब तक नाशवान चीजों से तबियत हटाकर सच्चाई जो हमेशा रहने वाली चीज़ है, की तरफ़ चलें और मन से उनकी ख्वाहिशों को आहिस्ता-आहिस्ता छोड़ते जावें । जिन चीज़ों को ज़िन्दगी में बिना रखे गुजारा न हो उनको साथ रखें पर उनमें भी अच्दर से न फेंसें और जिन चीज़ों से वास्ता नहीं हो या ग़ैर जरूरी सी हैं, उनसे मन हटालें और सच्चे गुरु की तलाश में रहें । जब सच्चा गुरु मिल जाय तब पूर्ण रूप से अपने आपको उसके आधीन कर दें और जैसा वह कहे वैसा ही करें। और अगर किसी को सच्चां गुरु मिल गया है तो उसके कहने के मुताबिक़ और शुद्ध बुद्धि से सोच विचार कर जो रास्ता वह बतावे उसपर चलने की कोशिश करें । अगर किसी को गुरु में विश्वास भी है और बुद्धि ने बगैर सोच विचार करे उसको अपनाया है और पूरा क़बूल नहीं किया है तो गुरु के बतलाये हुए रास्ते पर सच्चाई और पूरी श्रद्धा और शक्ति के साथ चलें । जब तक दिल उसमें शामिल नहीं होगा, उसे कामयाबी नहीं होगी और आख़िर को रास्ते से भटक जायगा और छोड़ देगा ।

इसलिए हर जिज्ञासु को अपनी कामयाबी के लिए ज़रूरी है कि सच्चे गुरु की शरण ले और विवेक से काम ले। जितनी जितनी तरक्की इन दोनों बातों में करता जायगा उतना ही रास्ता उसका जल्दी तय होता जायगा और दो तीन जन्मों में हमेशा हमेशा के लिए इस आवागमन के प्रपंच से छूट जायगा । बल्कि यह भी ज़रूरी नहीं. है कि तीन चार जन्म ही लगें । यह रास्ते की मुद्दत उसके शौक़ पर मुनहसिर है ।

गुरुदेव सबका कल्याण करें।

xxxxxx

सच्चे आनन्द की प्राप्ति कैसे हो ?

(लिखित प्रवचन)

राम के प्यारे भक्तो ! मैं आज आप से इस विषय पर बात-चीत करूँगा कि इन्सांनी-ज़िन्दगी (मनुष्य जीवन) का आदर्श क्या हैं? इन्सानी ज़िन्दगी का पाना यानी इंसानी जन्म (मनुष्य जन्म) मिलना एक बड़ी खुशक़िस्मती (सौंभाग्य) की बात हैं जिसका ख़ास ध्येय यह हैं, कि परमात्मा का अनुभव करे और दुनियाँवी प्रपंच से छुटकारा पावे । अगर यह क़ीमती ज़िन्दगी इस ध्येय की पूर्ति के लिए न लगाई गई तो जानवर और इन्सान की जिन्दगी में कोई फ़र्क नहीं हैं । अगर हम सच्चे भक्त बन जायें तो हम कर्मों के जंजाल से छूट जायें और इन्द्रियों के जाल से हमेशा हमेशा का छुटकारां मिल सकता हैं। जब तक हम दुरनियाँवी मामलात (बातों) के बारे में सोचते रहते हैं और ख्वाहिशांत उठाते रहते हैं हम कभी खुश नहीं रह सकते । जब हमारा मन और बुद्धि ईश्वर की तरफ़ लग जाते हैं तभी सच्ची खुशी हासिल होती हैं । परमात्मा की तरफ़ तवज्जह (attention) ध्यान लगाने और हमेशा हमेशा को इस प्रपंच से छूटने और सच्ची खुशी हासिल (प्राप्त) करने का साधन यही हैं कि हम उससे मिलने के लिए अपनी ख्वाहिश को जगायें और हर समय याद रखें । ईश्वर हर समय और हमेशा दिल में रहता हैं लेकिन उसके दर्शन तभी हो सकते हैं, जब हम अपने मन को वासनाओं से साफ़ कर लें । हमें उस तक पहुँचने के लिए ख्वाहिश उठानी चाहिए । उसको सच्चे आनन्द की हमेशा याद रखना चाहिए । उस तक पहुँचने का जतन करना चाहिए । उसी की बाबत सोचना चाहिए और आख़िर में पूर्ण रूप से अपने आपको उसके सुपुद कर देना चाहिए । जब हम पूरे तौर से अपने आपको उसको समर्पण कर देते हैं तब हमें अपने अन्तर में उसके दर्शन होते हैं और हमारी खुदी जो हमारे और उसके बीच में परदां हैं और जिसकी वजह से उसका अपने घट में हर समय रहते हुए भी दर्शन नहीं कर सकते, हमेशा के लिए जाता रहता हैं । ऐसा आदमी ईश्वर का ही रूप हैं। उसको सिर्फ शान्ति और आनन्द ही नहीं मिलता, बल्कि साथ ही साथ ईश्वर के कामों

का जरिया (साधन) बन जांतां हैं और इससे दुनियाँ का बड़ा उपकार होता हैं । वह पृथ्वी पर जिस्म में ईश्वर रूप होकर रहता हैं और उसकी पूजा भी ईश्वर के समान ही होती हैं ।

ईश्वर अपने भक्तों की पूजा करता हैं। गीता में लिखा हैं कि वह भक्त जिसको ज्ञान हो गया हैं या जिसने मोक्ष हासिल (प्राप्त) कर ली हैं सचमुच ईश्वर हैं। भगवत् गीता में श्रीकृष्ण भगवान ने जो स्वयं ईश्वर के अवतार थे, दुनियाँ को दिखलाया हैं कि वह किस तरह उन भंक्तों की जिन्होंने ज्ञान हासिल (प्राप्त) कियां था उन तक पहुँचे, कितनी इज्जत की हैं। उनका एक दीन भक्त सुदामा द्वारका उनके दर्शन को गया । जैसे ही उन्होंने देखा बड़े प्रेम से उनका स्वागत किया, उनको अंपनें सिंहासन पर बैठाया और उनकी पूजा की ।

एक बार नारद द्वारका में श्रीकृष्ण भगवान के दर्शन को गये । महलों के दरवाज़ों पर उनको रोक दिया गयां। उनसे कहा गया कि इस समय भगवान किसी से नहीं मिल सकते क्योंकि हमेशा की तरह वे इस समय पूजा हर रहे हैं। नारद को यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुंआ कि श्रीकृष्ण भगवान जो स्वयं ईश्वर के रूप हैं किसकी पूजा कर रहे हैं। इस बात को जानने के लिए वे आहिस्ता से अन्दर गये और सूराखों (भरोखों) में से देखने लगे जहाँ श्रीकृष्ण भगवान बैठे थे। उन्होंने देखा कि कृष्ण भगवान के सामने अम्बरीष, द्रौपदी, बाल्मीकि, नारद और बहुत से भक्तों की मूर्तियाँ रखी हैं । नारद अन्दर गये और श्रीकृष्ण भगवान से पूछा कि वे क्या कर रहे हैं । श्री भगवान ने उत्तर दिया मैं अपने भगवान की पूजा कर रहा हूँ और मेरे ईश्वर की मृत्तियाँ मेरे सामने रखी हैं ।

सचमुच जब एक भक्त पूर्ण रूप से ईश्वर में समपर्ण करके उससे मिलकर एक हो जाता हैं तो ईश्वर हो जाता हैं। दुनियाँ के अन्दर आदमी बाहरी चीज़ों को हासिल करते हैं लेकिन ऐसे भक्तों ने पूर्ण रूप से अपने मन को जीत लिया हैं और अपनी खुदी को ईश्वर में मिला दिया हैं और अपने अन्दर

ईश्वर को पा लिया है। बाइबिल में लिखा है कि हज़रत ईसा मसीह ने एक जगह अपने शिष्य के पाँव धोए और उसकी पूजा की ।

इन सभी ऊपर की बातों से पूर्ण रूप से स्पष्ट है-कि ईश्वर के भक्त सचमुच ईश्वर के अवतार हैं। शिव के भक्त इन्सानी शक्ल में खुद शिव हैं और इसी प्रकार विष्णु के भक्त इन्सानी शक्ल में विष्णु हैं । बुद्ध भगवान् जिन्होंने अपने मन को काबू में किया और अपने दिल की गहराई में गये, अन्त में निर्वाण हासिल किया और इस समय भी लाखों आदमी उन्हें पूजते हैं। ईसामसीह जो ईश्वरीय प्रेम का नमूना थे, आज उनको लाखों ही आदमी पूजते हैं । इस .पूजने का कारण यही है. कि ईश्वरीय शक्ति, शान्ति, आनन्द इन महात्माओं के दिल में जाहिर हुए । ऐसी महान आत्मायें जगत के लिए एक बड़ी बरकत (वरदान) की चीज़ हैं। उन्होंने अपनी इस ज़िन्दगी को दूसरों के लिये ईश्वर प्राप्ति का एक साधन बना दिया जिसका सहारा लेकर मनुष्य महान शक्ति (ईश्वर) तक पहुँच सकता है। इसलिए इस इन्सानी ज़िन्दगी का लक्ष्य उस ईश्वर को जो इसके अन्दर रहता है, जाहिर (प्रकट) करना है । हमको चाहिए कि आहिस्ता-आहिस्ता दुनिया की ज़िन्दगी से अपने मूँह को अन्दर की तरफ़ मोड़ें और उसे ईश्वर को अपने ही अन्दर पायें, तभी हमको सच्ची खुशी हासिल हो सकती है।

xxxxx

ईश्वर के नाम का जाप ईश्वर तक पहुँचाता है ।

साधारण मनुष्य के लिए जो दुनियाँ में फँसा हुआ है ईश्वर तक पहुँचने के लिए सबसे सरल उपाय यही है कि उसके नाम का उच्चारण बराबर किया जाय । उसके नाम का उच्चारण करने से वह उसे उस ईश्वर से मिला देता है जो उसके दिल में रहता है। जितना ही वह इस पवित्र नाम का उच्चारण करता जायगा वह अपने अन्दर उस परमात्मा के नजदीक (निकट) पहुँचता जायगा। अपने अन्दर से बुराइयों को निकालने, आनन्द और ईश्वर को प्राप्त करने का इससे आसान तरीक़ा कोई नहीं है। नाम के उच्चारण से केवल मने ही शुद्ध नहीं होता बल्कि नाम भक्त को अपने भगवान से मिला देता है । मैं नाम की बरकत जो आपको सुना रहा हूँ, यह अपना ही तजुर्बा नहीं है बल्कि दुतियाँ के सभी संतों का यही तजुर्बा है। इसलिए मेरी आपसे यही प्रार्थना है कि ईश्वर की सच्ची भक्त करो, उसमें सच्चा विश्वास लाओ और उसका पवित्र नाम बराबर लेते रहो । इससे तुमको उसके देन अपने दिल में होंगे और तब सारे जगत में ही उसके दर्शन होंगे । ईश्वर के ताम लेने में कोई दिक्कत नहीं है। उसके लिए कोई खर्च भी नहीं करना पड़ता । ने कोई ख़ास तरीक़ा बैठने का है और न किसी चीज़ की ज़रूरत है। तुम उसका नाम हर समय हर जगह ले सकते हो । जब तुम हाथ पाँव से काम कर रहे हो तब उसका नाम ले सकते हो, जब तुम कहीं जा रहे हो चाहे गाड़ी में, चाहे पैदल, तुम बड़ी आज़ादी से उसका नाम ले सकते हो । इस अभ्यास से कुछ दिनों बाद खुद-ब-खुद (स्वतः) ही तुमको अपने अन्दर शब्द सुनाई देगा। तुम्हारे अन्दर ईश्वर का प्यार-खुद-ब-खुद ही पैदा हो जायगा ।

xxxxx

संतों की कृपा

ईश्वर के लिए यह प्यार और भक्ति सिर्फ़ सन्तों की कृपा से मिले सकती हैं। यह उन्हीं की कृपा हैं. कि हमारे दिलों में ईश्वर का विश्वास-आता हैं .और उसका नाम लेने की कामना पैदा होती हैं । वह दुनियाँवी माँ-बांप से जो हमारे जिस्म और. दुनियाँ की ही देख-रेख करते हैं, ज्यादा कृपालु और मेहरबान होते हैं, क्योंकि वह हमेशा यह चाहते हैं कि हम दुनियाँ के कर्म और बन्धनों से हमेशा के लिए छूट जायें । उनकी जिन्दगी का ख़ास ध्येय यही होता हैं. कि-वे सोई हुई आंत्मा को जगायें, उपर से अज्ञानता का पर्दा हटावें, उसको ईश्वर की- तरफ़ ले -जावें, और उसकी दुख की ज़िन्देगी को शान्ति की ज़िन्दगी बना दें ।

इसलिए हमको चाहिए कि हम सन्तों की कृपा. हासिल करें। परमात्मा. का नाम बराबर लेते रहें, अपनी. जिन्दगी को पवित्र बनावें और आख़िर में ईश्वर को अपने दिल में अनुभव करें और फिर तमाम दुनियाँ में उसी का खेल देखें ।

जंब हम ईश्वर् को हर जगह देख पावेंगे तभी हमारी जिन्दगी खुशी और आनन्द की जिन्दगी होगी । अगर हमने यह चीज हासिल कर ली तो हमने अपनी ज़िन्दगी सफल कर ली। इसलिए मैं फिर आपको नसीहत करता हूँ कि संतों की सौंहवत में जाओ । उनकी कृपा हासिल करो जिससे परमात्मा का प्रेम मिलेगा | उसका ध्यान वराबर बना रहेगा और मन शुद्ध होगा तथा ईश्वर का अपने अन्दर अनुभव होगा, जिससे हमेशा हमेशा के लिए जन्म मरण से छूट जाओगे और हमेशा का आनन्द प्राप्त होगा ।

xxxxx

सतसंग के वचन

हिन्दू धर्म ग्रन्थों में भक्ति नौ प्रकार की मानी गई है पर सन्तमत में केवल तीन प्रकार की भक्ति की जाती है (१) दास्य भाव (२) पुत्र भाव (३) स्त्री भाव (कान्ता भाव या मधुर भाव)

दास्य भाव -यह सबसे नीचे दर्जे की भक्ति ख्याल की जाती हैं। स्वामी और सेवक का भाव रहता है। हे प्रभू ! तुम स्वामी ही, मैं तुम्हारा दास हूँ । जितनी सेवा दास अपने स्वामी की करेगा उसी के अनुसार मालिक की सहानुभूति और प्रेम उसे मिलेगा । जंसा काम वेसा दाम। दास का स्वामी पर कोई जोर नहीं रहता । वह केवल सेवा और प्रार्थना कर सकता है। देना न देना तो स्वामी के ही हाथ है ।

पुत्र भाव-यह दास्य भाव से उत्तम है। पुत्र कितना ही निकम्मा हो, पिता चाहे अपनी धन सम्पत्ति में से उसे तिल भर-न देना चाहे परन्तु प्राकृतिक प्रेम, जो पिता पुत्र के बीच की वस्तु है, उसे देने न देनेका कोई प्रश्न ही नहीं उठता । वह तो पुत्र का जन्मसिद्ध अधिकार है। पिता चाहे या न चाहे, पुत्र के प्रति स्नेह को कभी नहीं रोक सकता । उसमें पुत्र का हिस्सा अवश्य ही है और वह प्राकृतिक है । पिता चाहे कितत। भी नाराज़ हो, जब भी बेटे को मुसीबत में देखेगा उसका दिल पिघल जायगा। इसलिए पिता-पुत्र भाव सेवक या दास्य भाव से कहों अच्छा है ।

कान्ता भाव--यह सर्वोत्तम भाव है। स्त्री को पति का आधा अंग अर्थात् अर्धांगिनी कहा जाता है। पति की कमाई हुई हर वस्तु में उसका आधा हिस्सा तो अवश्य ही है । यहाँ प्राकृतिक प्रेम की भी उतनी चिन्ता पत्नी को नहीं है। पति यदि प्रेम भी न करना चाहे पर अपनी कमाई का आधा हिस्सा तो उसे देना ही होगा । मधुर भाव या पति-पत्नी भाव में प्रेम की भी पराकाष्ठा होती है। जब स्त्री अपना सर्वेस्व पति को दे देती है, कोई पर्दा नहीं रहता तभी प्रीतम उसे मिलता है।

यहाँ दास्य भाव की सी निर्भरता नहीं है कि यदि मालिक की सेवा नहीं करोगे तो कुछ नहीं मिलेगा । न यहाँ पिता पुत्र भाव की सी ही कोई दशा है कि पिता अपनी कमाई में से चाहे तो दे और चाहे न दे । स्त्री भाव में तो यह पति का कर्त्तव्य हो जाता है कि वह अपनी पत्नी का उचित प्रबन्ध करे। दूसरे मानी में यहाँ पतिकी सब चीज जबरदस्ती मिलती है।

यह भाव धीरे-धीरे आता है। पहले पहल दास्य भाव ही सब में रहता है। साधक जैसे-जैसे कमाई करता चलता है और ईश्वर उससे प्रसन्न होता चलता है वह गुरु को (medium) माध्यम बना कर अपने आपको उनमें प्रगट करता है। अब पिता-पुत्र का भाव शुरू होता है और जैसे-जैसे पिता का स्नेह मिलता चलती है वह प्रेमी और प्रीतम के रूप में बदलता रहता है और गुरु कृपा से एक दिन ऐसा आता है कि प्रेमी प्रीतम पर अपना सब कुछ न्यौछावर करके उसमें लय हो जाता है और दोनों मिलकर एक हो जाते हैं । दुई और पहचान नाम को भी नहीं रहती है ।

मन तो शुदम तो मन शुदी, मन तन शुदम तो जां शुदी ।
ताकस न गोयद बाद अजी, मन दीगरम तू दीगरी ॥

भावार्थ मैं तू हुआ, तू मैं हुआ, मैं तन हुआ, तू जान हुआ । ऐसी एकता हो गई कि इसके बाद कोई नहीं कह सकता कि मैं और हूँ और तू और है ।

मनुष्य शरीर तीन चीज़ों का बना है: सत, रज और तम । इसलिए यह उसी चीज़ को देख सकता है जो इन्हीं तीन मसालों से बनी है । गुणों के लिहाज से तीनों के तीन अलग-अलग शरीर होते हैं स्थूल, सूक्ष्म और करण । स्थूल यानी यह पंचभौतिक शरीर जो बाहर से नंगी आँखों दिखाई देता है। यहाँ तम का पसारा (प्रसार) है । खाना-पीना सोना और इन्द्रिय-भोग करना ही इस शरीर का काम है। यह सबसे नीचे का धाट है । इससे आगे मन का शरीर यानी सूक्ष्म शरीर है । यहाँ रज

का पसारा है । अच्छे-बुरे का विचार, बुद्धि, विवेक और वासनाओं का बना-होता है । इससे भी ऊपर आत्मा का घाट है जिसे आत्मा का शरीर यानी-कारण शरीर कहते हैं ।

सुष्टि में तीनों प्रकार के शरीरधारी मौजूद रहते हैं । एक प्रकार के वे जो तीनों अंगों में बरतते हैं, जिनमें सत, रज और तम तीनों की मिलौनी है यानी मनुष्य । दूसरे वे जिनका स्थूल शरीर नहीं होता, केवल रज और सत में बरतते हैं जैसे देवलोक या पित्रलोक के वासी और तीसरे वे जो केवल सत ही सत में बरतते हैं –यानी वे मोक्ष आत्मायें जो पर्दा (निर्वाण प्राप्त) कर चुकी हैं, जिनका न मनका शरीर है और न पंचभौतिक ।

आमतौर पर मनुष्य तीनों अंगों में बरतता है इसलिए उसे इन्हीं तीनों अंगों बरतने वाले शरीरधारी दिखाई देते हैं लेकिन जब वह स्थूल से ऊँचां उठ कर सूक्ष्म और कारण शरीर के घाटों में बरतता है तब उसे दूसरे प्रकार के शरीरधारी जो इन्हीं दोनों अंगों में बरतते हैं दिखाई पड़ने लगते हैं। मिसाल के तौर पर (उदाहरणत) सत्संग के समय किसी-किसी भाई को अपने आस-पास बहुत से लोग भी बेठे दिखाई देते हैं जो सतसंग में बैठने से पहले वहाँ मौजूद न थे और न वाद में मौजूद रहते हैं। किसी सत्संगी को अपने गुरुवंश के पूर्वज जैसे परमसंत महात्मा रामचन्द्र जी महाराज या अन्य मोक्ष आत्मायें जो पर्दा कर चुकी हैं वहाँ पर मौजूद दिखाई देती हैं। इसका कारण यह है कि जितनी देर उन्हें ऐसे महान् दर्शन होते हैं उतनी देर के लिए उनकी सुरत ऊँचे घाट पर होती है, यानी सत् में बरतती है और उनमें उसी प्रकार के गुण आ जाते हैं ।

ईश्वर प्रेम ही मोक्ष प्राप्ति का साधन हे ।

(दि० २८-३-१९६५)

लोगों को शिकायत होती हैं कि हमें फ़ायदा नहीं होता, पर कारण क्या हैं ? उस ईश्वर की मेहरबानी तो हर एक पर हैं । दुनियाँ दो हैं । एक आत्मा की व एक मन की । यहाँ दो चीज़ें हैं । Cause (कारण) और (result) परिणाम । यदि आप परिणाम चाहते हैं तो कारण को टटोलें । हमने वास्तव में इसको एक अलहदा चीज समझ रखा हैं। बच्चों से प्यार हैं या-अहम् में फंसे हैं इन संबसे परे होकर सच्चे बाप परमात्मा के प्यार में लीन रहें । जो परमात्मा को एक बार प्यार करता हैं उसे वह हज़ार बार प्यार करता हैं ।

दो अंग हैं । एक काल का दूसरा दयाल का । दयाल सख्ती नहीं करता बल्कि अगर तुम्हारे अन्दर उसे पाने की तड़प हैं तो वह मेहरबानी ही करेगा । इश्क़ अव्वल (पहले) माशूक़ के दिल में होता हैं । इसीलिये दुनियाँ के सब सुख पाकर भी आप सुखी नहीं हो पाते । ऐसा क्यों ? स्पष्ट हैं कि आपकी आत्मा परमात्मा से मिलनें के लिये व्याकुल हैं और सभी सांसारिक वैभवों के बीच भी वह उदासीन हैं । अतः अगर चाहते हो तो जल्दी रास्ता चलो, तभी मिलन सम्भव हैं । यदि दरअसल में आप सब क़ीमत चुकाने को तैंथार हैं तो वह आपको अपनी गोद में शरण देगा । वह चाहे तो हर चीज़ उलट दे क्षण भर में, पर उससे लाभ क्या ? कुरान शरीफ़ में एक आयत हैं "अगर वन्दा एक क़दम चलता हैं तो वह हज़ार कदम उसे खींचता हैं" । आत्मा ईश्वर का अंश हैं इन सब मायिक वस्तुओं की मिलौंनी से एक अहम् पैंदा हो गया हैं, यही बीच में आकर बाधा बन गया हैं । सारी बाधा हैं 'मन' जो आत्मा के बीच में आ गया हैं, उसे हटा देना हैं । उसे हटा दें तो भी अगर जतन नहीं करते, खुद कोई क़ीमत नहीं चुकाते तो उस ईश्वर को दोष क्यों देते हैं। बाप कब प्यार नहीं करता ? स्वामी रामतीर्थ जी कहते हैं वह तड़प रहा हैं तुम उसके पास जाओ। अब देखो कौंन सी

रुकावट है ? तुम दौलत, स्त्री, सन्तान से हटना नहीं चाहते हो और फिर भी परमात्मा को हासिल करना चाहते हो । यह कैसे हो ? उस सांसारिक वस्तु को जिसे तुम सबसे अधिक चाहते हो, मन से हटा दो । ज़ब जब ख्याल आयें इस बीमारी को हटा दो । अक्सर सोते में शैतान मरता है । सन्तों को शैतान सोते में ही मारता है। अतः सोते समय भी उसकी (ईश्वर की) याद रखो । शैतान कहता है मैं तीन जगह मारता हुँ । जब कोई किसी स्त्री की आँख से आँख मिला कर बात करता है तब आँख के द्वारा में उसमें घुस जाता हूं । दूसरे, जब सन्त जायक़े (स्वाद) में फँसता है तब मैं उसमें घुस जाता हूँ । तीसरे, जब वह झयाल करके प्रभु का नहीं सोता तब मैं स्वप्न में मारता हूँ । इस प्रकार वह हमला करता है स्वप्न में और सुबह बह हालत गायब हो जातो है जो हत्फों दिल से नहीं निकलती और उसकी हरक़तें खूब नाच नचाती हैं । जब तक अपने को शैतान (माया) से नहीं बचाओगे तब तक ईश्वर को कहाँ पाओगे ?

सब काम को ज़रूरी समझते हो पर अगर कुछ जरूरी नहीं है तो वह है परमात्मा का खयाल । तो आर फ़ायदा चाहते हो त सबसे पहले उसकी याद करो । दुनियाँ के काम तो होते ही रहते हैं । मन बड़ा मक्कार है । यदि ज़रा भी loophole (ढीलापन) मिल जाय तो यह झट से नाच नचाना शुरू कर देता है । इसलिये इस पर बहुत एहतियात (सावधानी) की ज़रूरत है । ईश्वर, जो सबसे क़ीमती चीज़ है जिसने माँ के पेट से आपका साथ दिया, हर क्षण आपके साथ है । उसकी कृपा से ही elements (तत्व) तो सब एक दूसरे के विपरीत होते हुए भी आपस में जुड़े हुए हैं, ज़रा भी अगर वह हटा तो टूट जाते हैं । कई लाख nerves (स्नायु) हैं जो आपके शरीर में फैली है दिल से निकल कर आपके शरीर के रोम-रोम में वह बसता है । उसकी रहमते (कृपा) से हम पैदा होते हैं । बच्चा माँ के पेट में कितनी तकलीफ सह कर पड़ा रहता है, वहाँ कितनी गर्मी है पर यदि वहाँ उनकी

रहमत न रहें तो बच्चा जिन्दा नहीं रह सकता । फिर उसकी कीमतें क्यों न अदा करें। अगर तुमने उसकी कीमत अदा कर दी तो वह तुम्हें अपनी गोद में ले लेगा। जहाँ तुमने यह बात की और मन की जगह से हट कर आत्मा के स्थान पर पहुँचे, आनन्द ही आनन्द आ रहा है । उसकी रहमत हर क्षण बरस रही है।। उसे अपने में ज़ब्ब करने (पचाने) की कोशिश करों । जब तक आप का अपने ऊपर निज कृपा नहीं करेंगे वह नहीं मिलेगा | अगर हम ऐसे हो जायें, हममें ज़ब्ब हो जाये तो वह हर क्षण हमारे साथ रहता है।

चाह सच्ची हो, दुनियाँ की ग़रज के लिये न हो । उपासना प्रभु के लिये ही होनी चाहिये । ईश्वर की उपासना की पर साथ साथ दुनियाँ की चाह भी की तो उसे वह पूरी नहीं करेगा । देवता उपासना से प्रसन्न होकर सांसारिक चाहें पूरी करते हैं । लेकिन सांसारिक चाह पूरी हो जाने पर मोक्ष तो नहीं मिलेगा । मोक्ष तो तभी सम्भव है जंब आप केवल उसके प्रेम की कांमनों करें । जैसे अगर सीमेन्ट लेना चाहते हैं तो वह सप्लाई आफिसर देगा जवाहर लाल नहीं । इसी तरह जिसका जो मालिक है उसको वही पूरा करेगा । ईश्वर तो केवल आपको संसार में रख कर भी उससे उपराम कराता है । और यही मोक्ष है ।

संतमत में, महिमा उस चीज़ की है जो सुरत-शब्द के द्वारा ऊपर ले जाय । मन की क्रियायें जब तक हैं तब तक हम जमीन बना रहे हैं उसके लिये । मौंहब्बत-मौंहंब्बत से मरेगी । यदि दुनियाँ से आपको मौंहब्बत है तो ईश्वर की मौंहब्बत से उसमें कमी आवेगी । दुनियाँ के जो जरूरी काम हैं उन्हें तो निभाना ही है पर जायज़-नाजायज़ (उचित-अनुचित) का ख्याल करके । मालिक से मिलने की चाह बढ़ाओ | संत-मत में गुरु उसे कहते हैं जो ईश्वर रूप है । यदि उससे प्रेम हो गया है तो ईश्वर का प्रेम आ गया । यही सब कुछ है । शब्द प्रकाश, अच्छा ख्वाब, आकाश में उड़ना यह सब अच्छी चीज़ें हैं। इसका मतलब ईश्वर से प्यार हो गया । सन्ध्या-पुजा का सारा सार यही है कि

ईश्वर सें प्रेम हो । ईश्वर से प्रेम हो और वह न मिले, यह कभी नहीं हो सकता क्योंकि जो जन्म से ईश्वर का प्यार लेकर आता है वही ऊपर जाता है । पर जो नीचे से ऊपर जाता है उसे शुरू में ईश्वर से, प्यार नहीं होता, शुरू में तो वह कुछ और ही होता है।

मुक़ामात (चक्रों) के, खुलने के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिये । जहाँ भी प्रेम होगा क्षण भर में प्यार भर देगा । आपके यहाँ का तरीका बड़ा ही नाजुक और साफ़ है। जहाँ एक बार तड़प पैदा हुई, पार करके ही छोड़ेगी । रास्ते तो बीच के ज़रिये हैं। इनसे मतलब ही क्या? असली मक़सद (ध्येय) तो प्रभु का प्यार पाना है जोकि आपकी तड़प और विरह पर निर्भर है।

जब तक अपना हृदय साफ़ नहीं करोगे तब तक उसे कहाँ (शेष पृष्ठ ८३ पर)

(पृष्ठ ८७ का शेष)

पाओगे। मन; बुद्धि के स्थान पर तो विचार गरज़ाना (स्वार्थः का) होता है। पवित्र विचार और भाव तो आत्म/ के स्थान पर होता है। जहाँ-जहाँ आपकी सांसारिक मोंहब्बत फैली है वहाँ से उसको निकाल कर उसके क़दमों (ईश्वर के चरणों) "में रख दो, तभी उसका अनुराग मिलेगा ।

प्रश्नोत्तर

(उत्तरदाता- महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी महाराज)

प्रश्न : गुरु प्रेम प्राप्त करने के लिए शिष्य को क्या करना चाहिए ?

उत्तरः जब मनुष्य दुनियाँ की परेशानियों से तंग आ कर ईश्वर के दरबार में प्रार्थना करता है और इन सांसारिक झगड़ों स निकलना चाहता है, और अगर उसकी दुआ सच्चे और शुद्ध हृदय से होती है तो उसकी पहुँच ईश्वर तक हो जाती है। उसकी (मालिक की) मौहब्बत जोश में आती है और उसका असर उन लोगों के दिलों पर पड़ता है जो अपने दिल की इच्छाओं को मेट कर उससे लौ लगाये बैठे हैं और इस काम के लिए मुक़रिर होते हैं। वे ऐसे शख्स के पास पहुँच जाते हैं और उसंसे प्रेम करने लगते हैं। जितना वे अपने आप को उसमें लीन करते हैं उतनी ही मौहब्बत तालिब (इच्छुक) को उनसे बढ़ती जाती है यानी जितनी मौहंब्बत मुर्शिद (गुरु) को मुरीद (शिष्य) से होती है उतना ही ज्यादा असर शिष्य के दिल पर पड़ता है जिसके प्रभाव से वह गुरु प्रेम में मस्त हो जाता है । एक मुराद होता है (जिसको गुरु स्वयं प्यार करे) और दूसरा फ़िदाई है (जो गुरु को प्रेम करे, उस पर न्यौछावर हो)। आगे मुरीद और मुराद दोनों मिलकर एक हो जाते हैं । यह आपके सिलसिले (वंश) की बरकत है । इस सिलसले की निस्वत (आत्मिक सम्बन्ध) माशुक़ाना है, इसमें पहले मुशिद को प्रेम पैदा होता है और फिर मुरीद को, और दोनों मिलकर एक हो जाते हैं, यही असली तालीम है, यही प्रेम मार्ग है । जितन में कमी रहती है उतनी ही कमी तालिब में रह जाती है। अगर दोनों मिलकर एक हो जायूँ तो सिर्फ नाम के लिए फ़र्क रह जाता है उसी को निस्वत की मजबूती कहते हैं ।.....यही सच्चा प्रेम मार्ग है । यह बहुत सीधा किन्तु नाजुक है । इसमें अपनी हस्ती बिल्कुल मिटा दी जाती है और यह हालत हो जाती है कि जैसे मुर्दा जिन्दे के हाथ में होता है । सिर्फ़ अन्तर यह है कि मुर्दे के सामने लक्ष्य नहीं रहता और ऐसे मुरीद (शिष्य) के सामने अपने इष्ट का लक्ष्य रहता है । मुरीद के असली मायने (अर्थ) मुर्दा के हैं । ऐसी हालत के पैदा करने के लिए

बराबर कोशिश करते रहना चाहिए। अगर बगैर ख्याल किये खुद-ब-खुद ऐसी हालत होने लगे... कि तबियत एक सी रहें, आनन्द आता रहे, दुनियाँ के अन्दर बरतते हुए ऊपर उठते हुए मालूम देवें, प्रेम ओर मस्ती की हालत पैदा हो जाय और दिल में बराबर दर्द उठे तो समझना चाहिए कि वह मुरीद नहीं बल्कि मुराद बन गया है।

दिल को आज़ारे मौहब्बत के मज़े आने लगे,
उसके मैं क़ुरबाल जिसने दर्द पेदा कर दिया ।

मुरीद उस वक्त तक रहता है जब तक परमात्मा के दरबार में सुनवाई नहीं हुई थी । अब उसकी सुनवाई हो गई, उसकी दुआ क़बूल हो गई । वह क़बूल कर लिया गया और अब मुराद है । ऐसी हालत में उसको चाहिए कि वह अपने आप को सराहे । कोशिश करो कि ऐसी दशा ज़्यादा से ज़्यादा रहे और स्थायी हो जाय । ऐसा कोई काम न करे जिससे यह हालत जाती रहे। इसके दो उपाय हैं। अपनी सब ख़्वाहिशों को एक ख्वाहिश में लगा दो, यानी सिर्फ़ एक इच्छा रखो और अपना इस्लाक़ बहतर बनाने की कोशिश में रहो । जितनी इच्छायें मिटती जायेंगी उसी क़दर मजबूती निस्बत में आयेगी और अपनी हस्ती गुम होकर उसी मे समा जायेगी जो सबका आधार है । यही मोक्ष, निर्वाण पद इत्यादि नामों से पुकारा जाता है। इसी को सूफ़ियों और सन्तों की भाषा में राज़ी-ब-रज़ा कहते हैं। यानी हर हालत में चाहे कैसी भी क्यों न हो खुश रहना चाहिए। यहाँ पर बुराई भलाई से निजात मिल जाती है । आगे संस्कार मिट जाते हैं। कोई इच्छा शेष नहीं रह जाती है । यहाँ तक कि आखिर में परमात्मा से भी बेनियाज हो जाता है। यही गीता का चौथा पद है। तर्के दुनियाँ, तक उक़्बा, तर्क़े मौला, तर्क़े तर्क ।

* परमात्मा आप पर अपना फज़्ल करें - और बतुफ़ेल पीराने उज़्ज़ाम (वंश के महापुरुषों की कृपा से) अप्रनी इनायत और करमे फ़रमायें। जब जब आदमी किसी से प्रेम करता है तो वह उसकी

मौहब्बत हर वक्त चाहता है । हर समय इच्छुक होता है कि उसके पास बैठे और देखता रहे । फिर धीरे-धी रे उसकी शक्ल अपने हृदय में रख लेता है और उसी को देखता रहता है । जिस्मानियत से आगे बढ़ता है प्रीतम की आदतों उसमें आ जायें और जिस्मानियत व इख्लाक़ियत से वह वही बन जाय और- उसे जज्बे में पुकार उठे--"मन तो शुदम तो मन शुदी, मन तन शुदम तो जाँ शुदी । ताकस न गोयद बाद अज़ीं, मन दीगरम तो दीगरी.।" जिसका अर्थ है -"मैं त हो जाऊँ तू मैं हो जा, मैं जिस्म बन जाऊँ और तू मेरी न बन जाये ताकि फिर कोई यह न कह सके कि 'तू और है मैं और हूँ ।" कभी-कभी शरीर भी एक सी शक्ल इख्त्यार कर लेता है।

इसके बाद इस्लाक़ में तब्दीली शुरू होती है । जिस्म की शक्ल अब ख्याल में नहीं आती बल्कि एक इखलाक़ी शक्ल सामने रहती है। पहले इन्द्रिय आनन्द का मज़ा था, अब मानसिक आनन्द है। मानसिक आनन्द कहीं ज्यादा लतीफ़ (अधिक सूक्ष्म) देरपा (देर तक रहने वाला) और ख़ास खसूसियत (विशेषता) रखता है । इसी हालत को मजजूबितय या अवधूत गति कहते हैं । इसमें अजीब आनन्द होता है जिसके लिए इन्सान सब कुछ न्यौछावर करने को तेयार रहता है। जब इख्लाक़ मुकम्मिल (सम्पूर्ण) हो जाता है, यानी दोनों की वासनायें एक हो जाती हैं तो क़दम और आगे को वढ़ता है, आत्मा की नज़दीकी हासिल होती शुरू हो जाती है । गुरु का ख्याल ग़ायब हो जाता है, सिफे एक झुयाल क़रायम रहता है। अजीब मस्ती सी छाई रहती है जो अपनी मिसाल नहीं रखती वह और दायमी (स्थायी) होती है । फिर वह मुबारिक दिन आ जाता है जब उसे अपनी आत्मा का साक्षात्कार हो जाता है और वह कृत-कृत्य हो जाता है । जिसने इसका अनुभव कर लिया है उसकी तमाम इच्छायें ख़त्म हो गई ।. अब न कुछ जानने को रह जाता है, न हासिल करने को । यह हालत करफ़ी भी गुज़रंती है और कस्बी भी । अब प्राण, मत बुद्धि और- आत्मा का गिलाफ़ आत्मा पर से उतर जाता है और आत्मा अपनी असली हालत में जाहिर हो जाती है इसका ज़बान से वर्णन नहीं हो सकता बल्कि शुद्ध बुद्धि ही उसका अनुभव कर सकती है। इस बयान से

आपको तसल्ली हो गई होगी और समझ में आ गया होगा कि इस प्रेम्-की इब्तदा (आरम्भ) और इन्तहा (अन्त) कहाँ तक है ? बढ़े चलो । एक ख्याल सामने रखो और सब ओर से आँखें मींच लो।. अपनी हस्ती ख़त्म कर दो, कोई इच्छा बाक़ी न रह जाय सिवाय एक ख्वाहिश के उसके आगे परमात्मा को भी भुला दो, सिर्फ़ वही रह जाय।

एक संन्त ने अपने मुरीद से पूछा --तु मुझे क्यो समझता है ? उसने उत्तर दिया -बराय खुदास्त' (खुदा की जगह) । फ़रमाया -कुफ्र अस्त (यह कुफ्र है) । बराय खुदा न मी दानम (मुझे खुदा क्यों नहीं समझता) । (गुरु को) खुदा की जगह समझना शिर्क (नास्तिकता) है ।

सबको मिला कर एक कर लो और उसी में अपने आपको लय करो और आख़िर को वह भी छोड़ दो । जो असल है वही शेष रहेगा, बाक़ी सब ग़ायब हो जायेंगे। परमात्मा ने तुम को पैदा करके अपने आपको पोशीदा (अव्यक्त) और तुमको ज़ाहिर कर दिया । तुम्हारा फ़ज़् है कि अपने आपंको पोशीदा और उसको जाहिर कर दो, बस ।

खिदमत तीन तरह से होती है (१) जिस्म से (२) रुपये पैसे से (३) मन से। शुरू-शुरू में आदमी जिस्म से यानी हाथ पाँव से. ख़िदमत करता है । रुपये के मुक़ाबले में जिस्म से खिदमत करना' आसान है । बाद को जैसे मौहब्बत बढ़ती जाती है, रुपये से खिदमत करने लगता है और मौहब्बत की तकमील होने पर अपना सब कुछ दे डालता है । इसी को surrender (समर्पण) करना कहते हैं । यह आखिरी खिदंमत है । यह-सब बतदंरीज (क्रमशः) होता है । अपनी कोई ख्वाहिश न रखना, अपने प्रीतम की ख्वाहिश को अपनी रुवाहिश समभना, मन का देना होता है । यह मौहब्बत को इन्तहा है जिसका जिक्र ऊपर किया जा चुका है । आप बराबर आगे बढ़ रहे हैं। हीरे में सिफ़ात - (गुण) कूदरतन (प्राकृतिक रूप से) मौजूद होते हैं लेकिन उसको काम में तब लाते हैं जब उसकी

गढ़त हो जाती हैं। इस दुनियाँ के दुख तकलीफ़ ही ऐसे औज़ार हैं जिनके बराबर स्तेमाल से इन्सान की असली शक्ल निकल आती है और वह काम के लायक़ हो जाता है ।

प्रश्न २ : जब मैं अपने बच्चों और स्त्री व रिश्तेदारो से प्रेम करता हूँ तो केसे कह सकता हूँ कि मुझे अपने इष्ट से प्रेम है जब कि मौहब्बत सिर्फ़ एक से होती है ?

उत्तर- एक स्त्री अपने पंति के माँ-बाप, भाई बहन, रिश्तेदार, यहाँ तक कि उसके माल और दौलत सभी से प्रेम करने लगती है, सबका लिहाज करती है और देखभाल करती है । लेकिन उनसे क्या वह सचमुच मौहब्बत करती है ? नहीं, उनकी मौहब्बत का मरकज़ (केन्द्र) उसका पति है। जैसे-जैसे ताल्लुक़ात उसके पति के रिश्तेदारों से हैं वैसे ही उसके ताल्लुक़ात भी हैं, जिससे उसके पंति को मौहब्बत है उससे वह मौहब्बत करती है और जिससे पति नफ़रत करता है, वह. भी नफ़रत करती है ।

एकै साधे सब सधे, सब साधे सब जाँय।

आप अपने इष्ट से प्रेम करते हैं और उसकी सूरत को सब में देख कर सब को प्रेम करते हैं।

खाते हो जिन्दा रहने और उसका.नाम लेने के लिए, काम करते हो उसको खुश करने के लिए, अपने बाल बच्चों की- देख-भाल करते हो उसका हुक्म बजा लाने के लिए- ग़जें कि जो कुछ करते हो, उसके. ख्याल से, उसंको खुश करने के लिए, उसकी नजदीकी, उसका प्यार हासिल करने के लिए और इस तरह आपके ये सब काम आपकी पूजा ही है और चलना फिरना आपकी परिक्रमा है । अभी अगर ऐसा ख्याल मुस्तक़िल तौर से क़ायम नहीं हुआ है तो कोशिश करो और मदद लो अपने इष्ट से । यह भी हो जायेगा और तुम खुद महसूस करने लगोगे कि तुम जिससे मौहब्बत करते हो वही सच्चा प्रेमी उस परमात्मा का है और जो आँख बन्द किये हुए अपने को नाथने में

लगा है वह अभी दूर है । वह अपने ही सुधार में लगा हुआ है और अभी साधक है, सिद्ध नहीं हुआ है ।

मौहब्बत करना बुरा नहीं बल्कि ख़ास इन्सानियत है । मज़हब आप को पत्थर नहीं बनाता कि पत्थर की तरह ठोस हो जाओ, बल्कि बताता है कि दुनियाँ में सबसे मौहब्बत करो, यहाँ तक कि उससे भी जो तुम्हारी जान का दुश्मन है लेकिन हरेक में जलवा अपने प्रीतम का देखो और यही सच्चा और सीधा रास्ता इस असली प्रेम को हासिल करने का है । क्या तुम नहीं देखते कि हिन्दू सर्प को दूध पिलाते हैं जिसमें ज़हर हलाहंल भरा है, और जो इन्सानी ज़िन्दगी का शत्रु है।। मैं दुआ करता हूँ कि परमात्मा तुम को अपना सच्चा प्रेम दे और सीधे सच्चे रास्ते पर क़ायम रखे ।

अपने भाइयों की तालीम में निगाह रखो, उनके लिए दुआ करो, उनके लिए कुर्बानी करता सीखो। उसके दुख में दुखी और सुख में सुखी होना सीखो । अपनी हंस्ती को अपने-इष्ट का ध्यान - करते हुए भुला दो । उनकी भजाई में तुम्हारी भलाई है और वही सच्ची खिदमत इष्ट देव की है ।

xxxxx

गुरु कैसा होना चाहिए ?

(लिखित प्रवचन)

गुरु चार तरह के होते हैं। पहला माता, दूसरा पिता, तीसरा आचार, चौंथा सत्गुरु । जब बच्चा शिशु अवस्था में होता है, माँ उसकी गुरु होती है। जब वच्चा चलने फिरने लगता है, इधर उधर घूमने लगता है तव पिता उसका गुरु होता है। जंब बच्चा समझने बुझने लगता है, तब उसका दिमाग़ (बुद्धि) नश्वोनुमा (विकसित) होने लगता है, आचार्य जो उसको विद्या सिखाता है उसका गुरु है, जो सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तालीम देता है । जब इन्सान को इन (सांसारिक) चीज़ों को भोग कर उपरति हो जाती है और उस विद्या को जानना चाहता है जो अक्ल (बुद्धि) के दायरे (सीमा) से वाहर है, जिसका न आदि है, न अन्त है, जिस को जानने के बाद किसी और चीज़ के जानने की ज़रूरत नहीं रहती, जो विद्या इन्सान अपने आप हासिल नहीं कर सकता, जिस के जानने के लिए वह हमेशा बेक़रार (व्याकुल) रहता है, जिसके जाने बगैर उसको कभी चेन नहीं मिल सकता, जिसका ताल्लुक़ (सम्बन्ध) रूहानियत (आध्यात्म) से है, उस वक्त उसको ऐसे शख्स (व्यक्ति) की तलाश होती है जो यह तालीम (शिक्षा) दे सके और जो शख्स यह तालीम दे सके वह ही असली गुरु है। यह ही सतगुरु, सन्त, परमसन्त वगरा नामों से पुकारे जाते हैं । उनका ताल्लुक़ (सम्बन्ध) शिष्य के साथ सिर्फ रूहानी (आत्मिक) है और उनकी सौंहवत (सत्संग) और खिदमत से परमार्थी जज़वात (भावनाओं) को हरकत (स्फुरणा) मिलती है ।

इन्सान के तीन जिस्म (शरीर) हैं। स्थूल यानी माह (भौतिक) का जिस्म, सूक्ष्म यानी मन का जिस्म, और कारण यानी आत्मा का शरीर । स्थूल शरीर के गुरु माँ-बाप, सक्षम शरीर का गुरु आचाये और कारण शरीर का गुरु सतगुरु। जिस्म की परवरिश (पालन पोषण) के बाद मन की परवरिश होती है और मन के नश्वोनुमा (विकास) के बाद आत्मा की शुद्धि की ज़रूरत होती है । इस

तरह माँ-बाप के बाद आचार्य और आचार्य के बाद सतगुरु की आवश्यकता होती है। बगैर सतगुरु के ज़िन्दगी का आदर्श पूरा (आत्मा का साक्षात्कार) नहीं होता ।

माँ-बाप जिस्म (शरीर) के गुरु हैं और दिमागी नव्वोनुमा होने (मस्तिष्क के विकास) में भी मदद देते हैं । वह जिस्म के ताल्लिक़ (सम्बन्ध में) तालीम देते हैं । और इखलाक़ी (सदाचार की) तालीम भी साथ साथ देते जाते हैं । आचार्य विद्या की तालीम देते हैं । वह बतलाते हैं कि किस तरह विद्या पढ़ कर दुनियाँ में तरक्की करें । वे इख़लाकी (सदाचार की) तालीम देते हुए आत्मा की तरफ़ भी अहल (अधिकारी) तालिबिल्म (विद्यार्थी) की तबियत रागिब (उन्मुख) करते हैं। रुहानी (अध्यात्मिक) गुरु इखलाक़ी (सदाचार की) ताजोव देते हैं लेकिन उनकी तालीम वहाँ से शुरू होती हैं जहाँ इख्लाक़ी तालीम (सदाचार की शिक्षा) खत्म होतो हैं। जो उनकी सेत्रा में तेयार होकर जाते हैं यानी जिस्मानी और इखलाक़ी (शारीरिक एवं चारित्रिक) तालीम को मुकम्मिल (पूरा) करके जाते हैं उनकी बहुत जल्दी फ़ायदा होता है और जाते ही रूहानी तालीम (आध्यात्मिक विद्या) शुरू हो जातो हैं। जो तकमील (पूर्णता) करके नहीं जाते उनको देर लगती हैं क्योंकि उनको पहले इखलाक़ो (सदाचार की) तालीम कर तकमील की जाती है और फिर रूहानी तालीम शुरू की जाती हैं।

यह सतगुरु या तो दयाल देश से आते हैं या किसी परमसन्त की खिदमत (सेवा) में रहकर और उसका सत्संग करके दयाल देश तक रसाई (पहुँच) हासिल कर लेते हैं। जो शख्स दयाल देश यानी रूहानी मंजिल तक नहीं पहुँचा वह इस क़ाबिल नहीं होता कि दूसरों को आत्मा का साक्षात्कार करा सके । सन्त सत्गुरु को निरा इन्सान समझना सख्त ग़लती हैं। यह सही हैं कि सन्त ने संसार के उद्धार के लिए इन्सानी चोला (मनुष्य शरीर) अख्त्यार किया हैं मगर उसका असली स्वरूप परमार्थ है और वह मैंराज (लक्ष्य) हैं, आदर्श हैं, जो शागिद (शिष्य) के दिल और दिमाग़ (मन और मस्तिष्क) में क़ायम किये जाते हैं और वह उसकी मदद से उसकी तकमील (पूर्णता) करता हैं ।

जो वाल्देन (माता-पिता) खुद तन्दुरुस्त नहीं हैं, तन्दुरुस्ती के उसूलों (नियमों) का लिहाज़ नहीं रखते, आचार विचार ठीक नहीं हैं, वह औलाद (सन्तान) को तन्दुरुस्ती और इखलाक़ (आचरण) की कया तालीम दे सकेंगे ? जो उस्ताद (गुरु, टीचर) ख़ुद इल्म (विद्या) से वाक़िफ (जानकार) नहीं हैं, जिसका दिमाग़ (मस्तिष्क) खुद नश्वोनुमा (विकसित) नहीं हैं, जिसने यह पेशा सिर्फ पेट भरने के लिए अख्त्यार किया हुआ है वह क्या तालीम (शिक्षा) दे सकेगा और क्या इखलाक़ (सदाचार) सिखा सकेगा ? जिस ग्रुरु ने खुद आत्मा का साक्षात्कार नहीं किया है बल्कि यह भेस मान-बड़ाई, पेट भरने और ऐशो-अशरत (भोग-बिलास) की ज़िन्दगी बसर करने के लिए अस्त्यार किया है, वह क्या आत्मा का साक्षात्कार करायेगा ?

दुनियाँ में हद दर्जे की गलती और ग़लतफ़हमी (भ्रम) फैली हुई है । मामूली आदमी सनन्त-सतगुरु को अपनी तरह इन्सान (मनुष्य) समझते हैं जिससे उनके परमार्थ को नुक़सान पहुँचता है। जिसको सन्त-सतगुरु कहते हैं वह असल में रूहानियत (आध्यात्मिकता) का आदर्श है जो दिल में है। आदशे या मैराज (लक्ष्य) हमेशा ख्याल हुआ करता है और शागिद (शिष्य) उसको समझ कर जब उसको सन्त-सतूगुरु की ज़ाहिरी (बाहरी) सूरत की मदद से अपने अन्दर अनुभव करने लगता है, तो उसको तरह-तरह के परिचय मिलने लगते हैं और इन परिचयों का मिलना इस बात का सबूत है कि परमार्थ की मंज़िल में खुशक़िस्मती (सौभाग्य) से अब उसका दाखिला (प्रवेश) हो गया है।

इन्सान तमाम ब्रह्माण्डी शक्तियों का भण्डार है । जेसा बाहर से असर पड़ता है वेसे ही संस्कार अन्दर से नश्वोनुमा (विकास) पाते हैं और इन्सान वेसा ही आहिस्ता-आहिस्ता बनने लगता है।

जो तीन अवस्थायें जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति से निकल कर चौथी अवस्था की तरफ़ रहबरी (पथप्रद्शन) करे वह ही सन्त सतगुरु है। चौथी अवस्था आदश, आइडियल (ideal) और समाधि

(super conscious state) हैं । जब किसी को खुशकिस्मती (सौभाग्य) से ऐसे गुरु की खिदमत (सेवा) और सौहबत (सत्संग) नसीब हो जाती है तब ही उसमें रूहानी जज़्बात (आत्मिक भावनायें) आहिस्ता-आहिस्ता पैदा होने लगते हैं और देखते ही देखते वह बदल जाता है ।

बाज़ (कुछ) आदमियों का कहना है कि जो कुछ हमको लेना है किताबों से लेंगे । यह उनकी सख्त (बड़ी) भूल है । स्थूल वस्तु सुक्ष्म को ज्ञान नहीं दे सकती । अगर किताबों के पढ़ने से लोग परमार्थी बन सकते तो आजकल जब किताबों का इतना सैलाब (भरमार) है, परमार्थ का भी ऐसा ही सैलाब (वाढ़) आया होता लेकिन तजुर्वा (अनुभव) इसके ख़िलाफ़ (विपरीत) है । जो हमारी इखलाक़ी हालत (आचरण) है वह सबके सामने है। परमार्थ का फ़ायदा बगैर गुरु के कभी नहीं हो सकता । अगर आप को यकीन नहीं है तो आजमा देखो (परीक्षा कर लो) । हमारा तो अब तक का तजुर्बा यही है। किताबों का पढ़ना, पढ़ी हुई किताबों को दोहरा देना और बात है । और अपना निज का अनुभव और बात है। महज़ (केवल) जाहिरी इल्म को पढ़कर कोई परमार्थी नहीं बन सकता। नक्काल (नकल उतारने वाला) और भाँड ज़रूर बन सकता है और जब कभी परमार्थी जिन्दगी का सवाल आयेगा, मुंह के बल गिर जायेगा और इखलाक़ी (चारित्रिक) लग़ज़िश (ढील) का शिकार आसानी से हो जायेगा।

अन्दर आं दर साया आं आक़िले, कस न शायद बरू रह अज़ नाक़िल ।

इसका तर्जुमा (भावार्थ) यह है कि गुरु की शरण अख्त्यार कर । नाक़िल (नकल करने वाले) या भाँड़ की मदद से तू कभी सच्चे और सीधे रास्ते पर न आ सकेगा । गुरु की पहिचान बड़ी मुश्किल है । ताहम (तौ भी) जिज्ञासुओं के लिए कुछ मोटी मोटी बातें लिखी जाती हैं। जिनसे कुछ मदद मिल सकेगी:--

(१) पहली पहिचान यह है कि उसके सत्संग में जाकर बैठ जाइये और देखिये कि वहाँ पर शान्ति है या नहीं । अगर उसका मन शान्त है तो ज़रूरी है कि वहाँ का वातावरण शान्त होगा, और जैसे धूप से मारा हुआ आदमी भी साये (छाया) में आकर शान्ति महसूस (अनुभव) करता है उसी तरह दुनियाँ के दुखों से परेशान आदमी फ़कीर की सौहबत में आकर शान्ति महसूस करता है और आनन्द का अनुभव करता है ।

(२) दूसरे, उनकी सौहबत में जाकर गौर (ध्यान) से उनकी गुफ्तगू (बातचीत) सुने और देखे कि आपके सवालों का जवाब या उनकी हालत के मुताल्लिक़ (विषय में) उसमें कोई बात है या नहीं । अगर है तो वह शख्स (व्यक्ति) रौशन-जमीर (आत्म ज्ञानी) है और (आध्यात्म की) कमाई किये हुए है ।

(३) तीसरे यह कि उसकी सौहबत (संगति) में बेठकर आपको अपनी कमज़ो रियाँ महसूस होती हैं या नहीं । अगर महसूस होती हैं तो वह ज्ञानी है और उसका इखलाक़ (आचरण) ऊँचा है।

(४) चौथे ऐसे शख्स की सौहबत में कुछ दिनों बैठने पर अपनी इन्द्रियों पर क़ाबू आने लगता है और इखलाक़ (आचरण) की मामूली (साधारण) कमज़ोरियाँ दूर हो जाती हैं ।

(५) पाँचवें, यह देखे कि यह भेस उसने रुपया पैदा करने के लिये तो नहीं भरा है।

(६) छठे, यह कि वह मान बड़ाई का भूखा तो नहीं है ।

(७) सातवें, यह कि वह किसी की बुराई तो नहीं करता है।

(८) आठवें, यह कि उसकी कुछ दिनों की सोहबत (संगति) से दुनियाँ के बन्धन ढीले होने शुरू हुए हैं या नहीं और परमार्थ और परमात्मा से मोहब्बत मालूम होती है या नहीं। अगर यह असर है तो वह शख्स परमात्मा का भक्त है ।

(९) नौवीं, बात यह है कि उनके कलाम (बातों) में असर होगा ।

(१०) दसवें, उतकी आँखों और पेशानी (मस्तक) पर अधिकारी को परमाथ का नूर (प्रकाश) नज़र आयेगा।

(११) ग्यारहवीं पहिचान यह है कि उनकी जिन्दगी परमार्थी होगी । वे बगैर किसी लिहाज (भेदभाव) के परमार्थ की तालीम देंगे और जीवों को अपनी तरफ़ राणिब (आकृष्ट) करेंगे।

(१२) बारहवीं पहिचान यह है कि वह जिज्ञासु की ज़ाहिरी (हालत) नहीं देखते बल्कि बातिनी व अन्दरूनी (भीतरी) हालत देखकर तालीम देते हैं। अधिकारी को तरफ़ रागिब होते हैं (आकृष्ट) होते हैं) गैर अधिकारी से इखलाकन (दुनियाँ दिखाने को) मिलते हैं लेकिन रागरिब (आकृष्ट) नहीं होते और बाज़ दफ़ा कह भी देते हैं कि तुम्हारा हिस्सा हमारे पास नहीं है, दूसरी जगह जाओ।

(१३) तेरहवीं पहिचान यह है कि वह मज़हब, मत, पन्थ, सम्प्रदाय, वर्णाश्रम का मुतलक़ , (तनिक भी) लिहाज़ नहीं रखते । कभी किसी से अपना धर्म छोड़ने को नहीं कहते और समझा देते हैं कि हमारा तुम्हारा ताल्लुक (सम्बन्ध) सिफ़ रूहानी (आत्मिक) है ।

(१४) चौदहवें, बाज़ दफ़ा (कभी कभी) सन्त अपनी मौज से अपनी ज्ञात खास (निज व्यक्तित्व) में ऐसे सामान पैदा कर लेते हैं जिनसे संसारियों को घृणा होतो है मगर परमार्थ के लिए वह नुकसानदः (हानिकर) नहीं होते । यह इस वास्ते कि दुनियाँदार उनको परेशान न करे।

(१५) पन्द्रहवें, सन्तों के ज़ाहिर होते ही परमार्थ का सैलाब (बाढ़) आ जाता है। जौक़-दर-जौक़ (भीड़ की भीड़) आदमी आते हैं और परमार्थी बन जाते हैं

(१६) सोलहतें, सन्त सिर्फ़ रूहानियत (आध्यात्म) की तालीम देते हैं ओर मज़हब (धर्म religion) के जाहिरी और रस्मी (रीति रिवाज) बन्धनों से छुड़ाकर साफ साफ कह देते हैं कि सिवाय मालिक

के किसी की भक्ति न करो हर मालिक को सिवाय अपने घट के और कहीं तलाश न करो । तुम्हारा असली मन्दिर है, उसी में मालिक का दर्शन होगा ।

(१७) सत्रहवां वह वक्तन फवक्तन (समय समय पर) अन्तर में अपने शागिर्दों (शिष्यों) की सम्भाल करते रहते हैं। जाहिर व गायब (प्रकट और अप्रकट) सबको उनसे मिलती है।

(१८) अठारहवें, उनको तालीम सीना-ब-सीना (हृदय से हृदय को) होती है और अगर उनसे प्रेम का रिश्ता जुड़ जाए और इखलाक़ी (चारित्रिक) हालत दुरुस्त की जावे तो बगैर किये सुने खुद-ब-खुद (स्वतः) तालीम उतरती चली जाती है और मालुम भी नहीं होता।

(१९) उननीसवें, दूर-दराज़ (परदेस) में बैठे हुए तालीम होती रहेगी ।

यह चन्द (कुछ) बातें लिख दीं । जब तक पूरी तसलली न हो जांये उस वक्त तक गुरु धारण नहीं करना चाहिए चाहे इस तलाश (खोज) में एक जन्म ही क्यों न गुजर जाय । अगर गुरु करने में

जल्दी की तो बजाय फ़ायदे के नुक़सान होगा।

सोच समझ कर गुरु धारण करो और फिर उनपर अपना सब कुछ न्यौंछावर कर दो । उनको आदर्श मानकर और उनकी पाक (पवित्र) मूर्ति अपने हृदय में रखकर अपने घट में घुसो और आत्मा तक पहुँचने का अमल (क्रिया) सीखों।

५. गुरु का बाहरी स्वरूप शिष्य के अन्दर बातिनी स्वरूप (वह परमात्म-स्वरूप जो घट में है) का साक्षात्कार कराता है । इसी लिए गुरु की इज्जत की जाती है और उसका सहारा लेकर अपने अन्दर हक़्क़ुलनशीं (सत्पद) का दरजा हासिल किया जाता है । अगर ऐसे गुरु मिल जावें तो क्या कहना है । इससे ज़्यादा खुश नसीबी (सौभाग्य) और क्या हो

सकती हैं, और जब तक ऐसे गुरु नहीं मिलते, परमार्थ की कमाई मुश्किल है । यह सच्ची बात है, कोई माने या न माने ।

जब ऐसे गुरु मिल जाते हैं मन खुद-ब-खुद (स्वतः) ठीक हो जाता है। उनकी मकनातीसी कुव्वत (आकर्षण शक्ति) उसके ठीक करने में मददगार (सहायक) होती है।

"हेच न कुशद नफ्स रा जूल पीर, दरमन आँ नफ्स रा. सत्गुरु" सिवाय गुरु की महरबानी के कोई तेरे मन के विकारों को दूर नहीं कर सकता । ऐसे गुरु का पल्ला मज़बूती के साथ पकड़ो, कहीं छूट न जाये ।

तन सन ताको दीजिये, जाके विषया नारहि,
आपा सर से छाँड़ि के, राख साहिब माँहि।
मन दिया तो सब दिया, मन के संग दारीर,
अब देवे को क्या रहा, यों कथ कहैं कबीर ।
तन सन दिया तो भल किया सर का गया है बार,
जो कबहूँ कहे नहिं दिया, बहुत सहेगा मार।
तन मन दिया तो क्या हुआ, निज मन दियो न जाय, ..
कहैं कबीर ता दास से, कैंसे मन पतियाय।
तन-मन दीया आपना, निज मन ताके संग,
कहैं कबीर न भय भया, सुन सतगुरु परसंग।
निज मन तो चरनन किया, चरन कँवल की ठौंर,
कहैं कबीर गुरुदेव बिन, नज़र न आवे और ।

बाहर गुरु का दर्शन करो, अन्दर गुरु के साक्षात्कार करो और अपने आपको प्रकाश स्वरूप बना लो । क्यों टटोल टटोल कर परमार्थ की राह नहीं चल रहे हो । इससे कुछ फ़ायदा न होगा । रास्ते का भेदी साथ लो कि रास्ता आसानी से कट जाय ।

वस्तु कहीं ढूँडे कहीं, किस विधि आवबे हाथ ।
कहें कबीर तब पाइये, भेदी लीज साथ ॥
भेदी लीया साथ कर दीन्हा वस्तु दिखाय ।
कोटि जन्म का पन्थ था, पल में पहुँचा जाय ॥।

क्या अब तुमने गुरु की महिमा जान ली ? अगर जान ली तो तुम मुबारिक हो ।

जा खोजत ब्रह्मा थके, सुर नर मुनि देवा ।
कहें कबीर सुन साधुवा, कर सतगु सेवा ॥

भीख माँगने वाले, शौहरत (प्रसिद्धि) के दिलदादः (इच्छुक) दौलत के ख्वास्तगार (धन लोलुप) और इज्जत (मान बड़ाई) के चाहने वाले कभी गुरु नहीं हो सकते । यह तो औरों से चाहते हैं, तुम को कया देंगे। जो खुद भूखा है वह दूसरे को क्या खिलावेगा। उनके दाम (फन्दे) में मत फेंसो वर्ना ज़िन्दगी बेकार हो जायगी। और अगर फेस गये हो तो अभी वक्त है। उसको फौरन छोड़ दो और सच्चे गुरु की तलाश करो वर्ना तुम भी भिखमंगे बनोगे और परमार्थ से ख़ाली हाथ रहोगे।

पूरा सतगरु ना मिला, सुनो अधूरी सीख ।
स्वाँग जती का पहन कर, घर घर माँगी भीख ॥
भूठे गुरु के पक्ष को, तजत न कीजे बार ।
हार न पाव शब्द का, भटके बारम्बार ॥

साँचे गुरु के पक्ष में, मन को दे ठहराय ।

च चल से निउचल भया, छिन आवे छिन जाय ॥

गुरु का आदर्श रूहानी (आत्मिक) और ख्याली है । यह कभी न समझो कि तुमको मरदुम-परस्ती (मानव पूजा) की तालीम दी जा रही है । अगर ऐसा समझें तो ग़लती है। गुरु इन्सान (मनुष्य) को नहीं कहते । कुछ दिनों सत्संग करो तब पता लगेगा कि गुरु क्या है ?

गुरु तुम्हारा कहाँ है चेला कहाँ रहाय ।

क्यों करके मिलना भया, क्योंकर बिछुड़े आवे जाय ॥

गुरु हमारा गगन में, चेला है घट माँहि ।

सुरत शब्द मिलना भया, बिछुरत कबहू नाँय ॥

जो यह कहते हैं कि गुरु को पूजना आदमी को पूजना है वह ग़लती करते हैं और अगर ऐसा भी मान लिया जाय तो वह गुरु किताबों, पत्थरों, मूर्तियों से तो बहतर (अच्छा) है क्योंकि वह इन्सान है, चेतन्य है, माद्दा (स्थूल) या जड़ नहीं है । मगर नहीं, सच्ची बात यह है कि 'गुरुः इन्सान का नाम नहीं है और न गुरु कोई इन्सान हो सकता है । वह कोई और चीज़ है और वह आदर्श है जिसके आधार पर परमार्थ की सच्ची कमाई होती है । किसी ने क्या खूब कहा है : -

गुरु को मानस जानते, ते नर मूढ़ गँवार।

भवसागर के भँवर में, डूबे बारम्बार ॥

गुरु को मानस जानते, तन में अधिक विकार ।

गुरु किया है देह का, कंसे हो उद्धार ॥

गुरु को सानस जानते, भक्ति भाव क्या होय ।

तरैं न तारैं आपको, मूढ़ कहावैं सोय ॥

गुरु का जिस्म तो असल की नक़ल है। साया है, स्थूल रूप गुरु का है। असली गुरु तुम्हारे हृदय और मन में है । साये का सहारा लेकर असल तक पहुँचने का इन्तज़ाम किया जाता है। जब तक तुम स्थूल हो, तुम्हारा गुरु भी स्थूल है । जब तुम तरक्क़ी करके जिस्म से ऊँचे हो जाओगे, और तुम्हारी निगाह लतीफ़ और सूक्ष्म हो जायगी, तुम्हारा गुरु भी जिस्मानी (शरीर धारी) न रहेगा । वह लतीफ़ (सूक्ष्म) और ख़्याली आदर्श होगा । और जब तुम लतीफ़तर (सूक्ष्मातिसूक्ष्म) हो जाओगे, तुम्हारा गुरु भी और लतीफ़. हो जायगा और ख्याल से भी ऊँचा हो जायगा । यह ही असली गुरु है। गुरु सिफ्ती (विशेषण सहित) और परमात्मा में भेद है। जो गुरु को परमात्मा तक पहुँचने का जरिया मानते हैं वह मुशरिक (नास्तिक) हैं, ऐसा ख्याल सूफ़ियों का है । तू मराचे दानी, बराये खुदास्त, कुफ्रस्त, चरा खुदा नमीनी दानी भावार्थ एक सूफ़ी अपने मुरीद (शिष्य) से पूछता है कि तू मुझ को क्या समभता है? मुरीद (शिष्य) कहता है "खुदा की जगह ।" गुरु खबरदार करता है -"खुदा क्यों नहीं समझता ?" खुदा की.जगह आदमी समभना कुफ़ (नास्तिकता) है ।

xxxx

हमको कैसे मालूम हो कि सच्चा और असली गुरु कौन है ?

हरेक अपने आपको सच्चा ही गुरु बतलाता है । फिर हम केसे जाने कि कौन सच्चा और कौन झुठा है ? इसका जवाब तो यह ही है कि सूरज निकला हुआ है या नहीं, इसकी जाँच के लिये किसी सबूत की जरूरत नहीं पड़ती । हम मोमबत्ती जला कर थीं टार्च से सूरज को नहीं देखते। सूरज निकलते ही हर शख्स (व्यक्ति) खुद-ब-खुद (स्वयँ) जान जाता है कि सूरज निकल आया । इसी तरह जब किसी महापुरुष का जहूर (प्राकट्य) मनुष्य मात्र के उद्धार के लिये होता है, आत्मा खुद-ब-ख् द अनुभव करती है और उस तरफ़ खिच जाती है और तमाम बातचीत बहिस मुबाहिसा (तर्क वितकं) बन्द हो जाते हैं । सचाई खुद अपना सबूत है । उसके लिये किसी और सबूत की जरूरत नहीं । जब ऐसी आत्मायें आती हैं, उनका असर हमारे अन्दर महसूस होता है और तमाम दुनियाँ पुकार उठती है कि यह सच्चाई है । लेकिन तब भी कुछ ऐसी बातें हैं कि जिनको देखकर असली और नक़ली में तमीज़ (पहचान) की जा सकती है ।

पहली बात यह है कि वह शख्स (व्यक्ति) शास्त्रों के मायनी (अर्थ) मुराद (आशय) को बखूबी (भली भाँति) समझता होगा। लफ़्ज़ों (शब्दों) की बनावट और ऐर-फेर (तोड़-मरोड़) से उसका कोई तालल्लुक़ (सम्बन्ध) न होगा।

उसकी निगाह उनकी असल मुराद (आशय) पर होगी जिस ग़रज़ से वह लिखे गये हैं और उसके लफ़्ज़ों (कथन) में जान होगी और उसका असर सुनने वाले महसूस (अनुभव) करेंगे।

दूसरी बात यह है कि बह गुनाहों (पापों) से पाक-साफ़ (अछूता, पवित्र) हो,मासूम हो । दूसरी विद्याओं में हमें यह देखने की ज़रूरत नहीं है कि वह कसा है । उस वक्त हमें यह देखना होता है कि वह क्या पढ़ाता है, उसकी इल्मी लियाक़त (विद्या-ज्ञान) कैसी है । यह देखने की जरूरत नहीं कि

उसकी रहनी सहनी कैसी हैं। अगर बह चाल-चलन का अच्छा भी नहीं हैं तो भी अगर वह इल्मी लियाक़त (विद्या-ज्ञान) अच्छी रखता हैं तो अच्छी तरह पढ़ा सकंता हैं और आलिम (विद्वान) बना सकता हैं । लेकिन रूहानियत (आध्यात्म) में इसके बरखिलाफ़ (विपरीत) पहली चीज़ जो देखनी होती हैं,वो यह हैं कि उसकी रहनी सहनी कैसी हैं और फिर यह देखना होता हैं कि उसकी इल्मियत (पढ़ाई लिखाई) कंसी हैं। जो शख्स अच्छे चाल-चलन का नहीं हैं वह कभी रूहानियत (आध्यात्म) की तालीम (शिक्षा) नहीं दे सकता क्योंकि खुद भी रूहानियत नहीं आ सकती । खुदावन्द ईसा मसीह का मक़्ला (वचन, वाणी) हैं कि मुबारिक हैं वे जो दिल के पाक (पवित्र) हैं क्योंकि सिर्फ़ वे ही परमात्मा के दर्शन करेंगे। जब उसके पास कुछ हैं ही नहीं तो वह देगा क्या ?

तीसरी बात, उसमें शिष्य के लिये मौहब्बत और हमदर्दी (सहानुभूति) होनी चाहिये । और कोई ग़रज (स्वार्थ) शामिल नहो।

अगर गुरु को शिष्य से मौहब्बत और हमदर्दी (सहानुभूति) नहीं हैं तो कभी भी फ़ायदा नहीं होगा। सिर्फ मोहब्बत और इनक़िसारी (दीनता) ही एक वाहिद (एकमात्र) ज़रिया (माध्यम) हैं जिसके जरिये एक से दूसरे में रूहानियत मुस्तक़िल (transfer , प्रवेश) हो सकती हैं। और कोई ज़रिया नहीं । इसलिये मौहब्बत और हमदर्दी का होना निहायत ज़रूरी हैं।

गुरु महाराज तुम्हारा कल्याण करें।

xxxxx

सन् १९५८ के वार्षिक भण्डारे (दशहरे) पर दिया गया प्रवचन ।

(टेप का अंश)

(परमसन्त डा० श्रीकृष्णलाल जी महाराज)

सन् चौदह (१६१४ ६०) का वाक़ा (घटना) है कि मैं नाइन्थ (नौवीं) क्लास में पढ़ा करता था। मेरे वालिद बुज़ूंगवार (पूज्य पिताजी) ने एक चैक मुझे दिया और कहा कि इसे ट्रैज़री (खजाने) से केश करा लाओ (भुना लाओ)। मैं उस चैक को लेकर दफ्तर में गया । हैड क्लर्क (मुख्य लिपिक) ने फरमाया कि वो फलाने (अमुक) बाबूजी बैठे हैं उनको दे दो। मैं उनके पास गया, चेक पेश किया । आपने मेरी तरफ देखा तो बिजली सी चमक गयी जिस्म (शरीर) के अन्दर । कँपकपी पैदा हो गई जेसे कि एक एलेक्ट्रोड के पकड़ने से बिजली पास (संचालित) हो जाती है। मैंने आँखें नीची कर लीं। समझता नहीं था कि क्या राज़ (भेद) है। चुप होकर खामोशी से एक तरफ़ को हो गया। जब रुपया लेकर पास हो रहा था (निकल रहा था) treasury (खजाने) से तो फिर मैंने उन्हीं सहाब को देखा और उन्होंने भी देखा और फिर एक क्रिस्म (तरह) की बिजली सी पैदा हो गई । तबियत यह चाहती थी कि आपके क़दमों (श्री चरणों) से जाकर - चिपट जाऊँ। मैं वहाँ से चलकर अपने घर आ गया

बोडिंग हाउस (छात्रावास) में रहता था। रात को ख्वाब (स्वप्न) देखा कि एक बुज़ुर्ग (सन्त) हैं वे कहते हैं कि किस काम के लिए आया था, कया करने लगा ? और ज्यों ही मैं आपके क़दम (पाँव) छूना चाहता हूँ तो आप ठोकरें मारते हैं। ठोकर देते हैं ओर कहते हैं कि हम दुनियाँ के कुत्तों से पाँव नहीं छुआते । मैं रात भर परेशान रहा, क्या किस्सा है । सुबह को आँख खुली । एक मुन्शी साहब थे वे आपके पास जाया करते थे । मैं भी ख़िदमत में गया । वहाँ जाकर क्या देखता हूँ कि वे ही क्लर्क साहब जो ६४४०१ (खजाने) के अन्दर थे, वहाँ बैठे हैं। मैं भी बैठ गया । लोगों से बातचीत के

बाद आपने फरमाया - कहो श्रीकृष्ण, तुम किस तरह से आये ।" मैंने अर्ज की कि रात को ख़्वाब देखा है उसकी वजह से परेशान हूँ । मैंने सुना है कि आप ख़्वाब की ताबीर फ़रमाते (आशय बताते) हैं, इस वास्ते हाजिर हुआ हूँ । आपने ख़्वाब को सुना । फ़रमाने लगे -"अज़ीज़, ये ख्वाब नहीं है, वाक़ा (सत्य) है। तुम मेरी पुरानी आत्मा हो । तुम्हारी तलाश में मैं मुद्दत से था । जब treasury (खजाने) में तुमको देखा तो पहचान लिया । मैं बराबर बुला रहा था लेकिन तुम नहीं आते थे। रात को फ़क़ीर की शक्ल में मैं ही था । ख़्वाब की ताबीर ये है कि तुम मेरे हो, मैं तुम्हारा हूँ। तुम इस दरवाज़े से अब नहीं जा सकते ।"

मैं आपकी ख़िदमत में जाता रहा। मुख्तलिफ़ (विभिन्न) हालतें गुज़रती रहीं । सन् १९१९ में आप दौरे पर जा रहे थे । मैंने अर्ज़ किया कि ये सत्संग जो आप करा रहे हैं इसका कौन इन्तजाम करेगा । आपने फ़रमाया "तुम जो मौजूद हो ।" जितनी भी इज़ाज़तें मुझको (विभिन्न सम्प्रदायों से) मिली हैं वे सब मैंने तुमको दे दीं लेकिन इसका ऐलान वक्त पर किया जायगा जब तुम्हारी ख़राश तराश (गढ़त) करके इस क़ाबिल बना दिये जाओगे । जब उनके जाने का वक्त आया तो आपने फ़रमाया कि मेरे गुरु ने जो काम मुझको सुपुर्द किया था उस को मैं पूरा न कर सका लेकिन मुझे उम्मीद है कि उसको तुम पूरा करोगे । अगर मेरा काम करते रहे तो दीन और दुनियाँ की कोई नैमत नहीं है जो तुमको न मिले । और नहीं किया तो आक़बत (परलोक) में इसका जवाब तुमको देना होगा ।

इसके बाद तालीम मैं बराबर करता रहा । सन् १९३१ में आपने इजाजत मुकम्मिल (सम्पूर्ण) आचार्य पदवी अता फ़रमाई।

इजाजतें क्या होती हैं ?

हमार यहाँ एक इजाज़त शर्तिया है जिसका मतलब यह है कि सत्संगियों को एक जगह इकट्ठा करे और सत्संग करायें । इसका इजाजत सत्संग कहते हैं, यह शरतिया इजाज़त है ।

दूसरी इजाजत साध की है जिसको इजाज़त तालीम भी कहते हैं । वो ये है कि आप उनको इकट्ठा भी करें और जो नये लोग हैं उनको तालीम भी दें । और फिर जब मौक़ा मिले जल्दी से जल्दी अपने गुरु के सामने पेश कर दें।

तीसरी इजाजत हमारे यहाँ आचार्य की है जिसको ये अखत्यार दिया जाता है कि वह जिज्ञासुओं को बैत करे (दीक्षा दे) और अपने सत्संग में शामिल कर ले ।

चौथी इजाज़त हमारे यहाँ इजाजत कुल्लिया (इजाज़त ताआम्मा, सम्पूर्ण आचार पदवी) है । उसका मतलब ये है कि –जो तुम हो सो मैं हूँ । और ये इजाज़त देकर अपने से अलहदा कर देते हैं ।

ये चार इजाज़तें हैं । मुझको आपने इजाजत शतरतिया सन् १९१५ में अता फ़रमाई, दूसरी इजाज़त सन् १९२० में और उसी वक्त में आम बत की भी दी । तकमील की इजाजत (इजाज़त ताआम्मा) आपने सन् १९३१ में दी।

हमारे यहाँ यह भी तरीक़ा है कि इस इजाजत को देते वक्त अगर यह देखते हैं कि अभी तकमील (पूर्णता) नहीं हुई है, पूरी कश्फी तौर पर (गुरु की खैंच शक्ति द्वारा) हो चुकी है लेकिन कस्बी (शिष्य के अभ्यास द्वारा) नहीं हुई है तो मुमकिन है कि वो किसी वक्त रास्ते से बे-रास्ते न हो जाय, इस एहतियात (सावधानी) की वजह से किसी दूसरे की मातहती में दे देते हैं कि उनसे इसकी तस्दीक करा लो । ये ज़रूरी नहीं है कि यह तस्दीक़ सबके लिए की जाय । अगर यह समझते हैं कि वह शख्स दूसरे की तरफ़ रागिब हो जायग़ा और तकमील कर लेगा तो फिर इसकी ज़रूरत नहीं है

। लेकिन अगर वो ये समझते हैं कि ये दूसरे की तरफ़ राग़िब नहीं होगा तो फिर एहतियातन यह कर देते हैं कि सुपुर्द कर देते हैं किसी शख्स के (समकालीन पूर्ण सन्त के) और उससे कह देते हैं कि निगाह रखना और मेरा जो इजाज़तनामा है उसे तस्दीक़ (पुष्टि) कर देना ।

हमारे यहाँ इजाज़त writing में (लिखित) देते हैं । मानीटरी की इजाज़त (सत्संग कराने की) या तालीम की इजाजत लिखित में देने की इतनी जरूरत नहीं है लेकिन बेत करने की (दीक्षा देने की) इजाजत writing (लिखित) में देते हैं और उसमें लिख देते हैं कि इन्होंने फ़लाँ (अमुक) दर्जा ते किया है और इनको तालीम की इजाजत है । ये इस वास्ते किया जाता है कि सिलसिला (परम्परा) बिगड़ न जाय, हर शख्स इस काम को न कर सके ।

मैंने अपनी जिन्दगी में यह तों, जरूर है कि मुझको एक लहमा (क्षण) भी याद नहीं है कि जिस वक्त मैं हजरत (गुरुदेव महात्मा रामचन्द्र जी महाराज) से बदएतक़ाद (विश्वास खो बैठना) हुआ होऊँ या उनकी याद न रहती हो । रियाज़त मुझसे नहीं छुटी । काम भी मैं उनका ठीक तरह से न कर सका। इस की वजह मेरी इखलाक़ी कमजोरियां थीं जो मेरे खानदानी या मेरे पिछले एमालों (कर्मों) का नतीजा हैं । अगर मेरा इखलाक़ गिरा हुआ न होता तो मुमकिन है कि मैं इस काम को और भी अच्छी तरह से करता, लेकिन बहरहाल कोशिश में मैंने कमी न रखी । जितनी मुझसे खिदमत (सेवा) हो सकी, मैं बराबर (सत्संग) की खिदमत करता रहा और जब तक मौजूद हूँ और जिस्म क़ायम है (शरीर से जीवित हूँ) बराबर खिदमत करता रहूँगा। लेकिन नहीं मालूम वक्त कब आ जाय, इस बात का लिहाज रखते हुए मैंने भी क़ायदे के मुताबिक़ कुछ साहिबान को इजाजत दी है कि वो इस काम को करते रहें ।

इजाज़तें

भाइयों में डाक्टर श्याम लाल साहब - आपको इजाजत बेत हैं । दूसरे, मुख्त्यार साहब बाबू सेवती परशाद साहब, आप भी मेरे भाइयों में हैं। आपको भी इजाजत बेत की है | अपने अजीजों, लड़कों में से सरदार करतार सिंह और डाक्टर हरी कृष्ण, इन दोनों को इजाजत बेत हैं । तालीम की इजाजत जिन लोगों को है उनके नाम बाबू सेवती परशाद पढ़कर सुनायेंगे । इन शख्सों में से यह मुमकिन है कि आगे चलकर बाज लोगों क इजाजत बेत की भी दी जाय यानी उपदेश की भी इजाजत दी जाय | यह मतलब नहीं है कि सिफ़ ये ही खलीफ़ा हैं, खलीफ़ा एक भी करते हैं, दो भी करते हैं और अगर अहलियत देखते तो बहत सों को भी कर लेते हैं ताकि काम का सिलसिला ठीक चलता रहे । लेकिन ये अहलियत (योग्यता) पर है। पन्द्रह सोलह आदमी और हैं जो इस काम को कर रहे हैं । आपकी वाक़िफ़ियत के लिये बाबू सेवती परशाद उनके नाम आपको पढ़ कर सुना देंगे ताकि जोगों फो ये भाणूम हो जाय कि फलाने फलाने (अमुक-असुक) शख्स इस काम को कर रहे हैं । तहरीरी (लिखित) इजाजत मैं बाद में उन लोगों को भेज दुंगा।

श्री सेवती प्रसाद साहब ने नाम इस प्रकार पढ़े :--

बाबू ज्योती स्वरूप साहब (पेशकार साहब) ।

सरदार शेर सिंह साहब, मेनपुरी ।

लाला प्रभुदयाल साहब, मैंनपुरी ।

ठाकुर शिव नरेश सिह साहब, बनारस ।

बाबू राम दास साहब, बनारस

बाबू दामोदर दास साहब, ग्वालियर

(यहाँ पर गुरुदेव ने कहा -अन्सारी साहब, क्या नाम हैं उनका, अन्सारी साहब का, बाबू अब्दुल रहीम साहब, अन्सारी) ।

लाला बाबू राम साहब, कटिया ।

श्री जय नारायण गौतम, बरेली

पे० काशीनाथ साहब, गाजियाबाद

श्री बन्सीधर साहब, गोरखपुर

श्री सत्य प्रकाश जी, इलाहाबाद

. डाक्टर महेश चन्द्र, गाजियाबाद ।

बाबू गोपाल सहाय माथुर ऐटा।

डाक्टर महेश्वर सहाय साहब, इन्दौर ।

इसके अलावा और लोग भी हैं जो सत्संग का काम कर रहे ?

procedure (विधि) क्या हैं

इसके सिलसिले में आपको इसके मुताल्लिक़ (सम्बन्ध) मैं

बता दूँ कि procedure (विधि) क्या हैं । जिन चारों साहिबान को इजाजत (बैंत) हैं उन साहिबान से मैं ये अर्ज करूगा कि better (अच्छा) ये हैं कि मेरी मौजूदगी में वे किसी और बुजुर्ग से इसकी तस्दीक़ करा लें ताकि ये धोखा न रहे। मुझे यही ख्याल हैं कि ऊपर से ये ही हुक्म हैं मगर मुमकिन हैं कि मुझे धोखा हो इसलिये बेहतर ये हैं कि सिलसिले के किसी बुजुर्ग से इसकी तस्दीक़ करा ले।

दूसरा ये हैं हमारे यहाँ का तरीका कि एक जिन्दगी में एक ही गुरु रहता है। इसकी दो वजह हैं । एक तो ये कि सिलसिला मौजूदगी में ५॥०/४ ते हो जाय, (टुकड़े न हो जाये) दूसरे, दो independent (स्वाधीन) गुरु एक जगह नहीं रह सकते। जब इजाजत कुल्लिया (सम्पूर्ण आचार्य पदवी) दे दी जाती है तो independent (स्वाधीन) भी कर दिया जाता है और अपने पास से अलहदा कर दिया जाता है, अपने पास नहीं रखते हैं । लेकिन कुल्लिया इजाजत बाद में देते हैं। या तो वो ही बुजुर्ग जिन्दा रहता है तो दे देता है वर्ना दूसरा देता है। तो इजाजत बँत है मगर इस ख्याल से कि तफ़रंक़ा (भेद-भाव) न पड़े और इस ख्याल से भी कि एक अदब के खिलाफ है, गुरु की मौजूदगी में बँत नहीं करते हैं। मुझे इजाजत कुह्लिया सन् १९२० से थी लेकिन सन् १६३१ या उसके वाद में मुद्दत तक मुझे बँत करने का ख्याल भी नहीं आया । इसलिये चारों साहिबान को जिनको बँत की इजाजत है उनको ये ही सलाह दूंगा कि सोसायटी को जिन्दा रखने के लिये और अदब का लिहाज महफुज रखते हुए मेरी मौजूदगी में इसको अमल में न लाये। बाद में परमात्मा तुम्हें बरकत दे और हजारों की तादाद में तुम्हारे परोकार हों । ये सिर्फ इस बिना पर है कि मैं ये नहीं चाहता हूँ कि जिस खेती को और जिस काम को मैंने जितनी भी मुझ में काबिलियत थी और मुझमें हिम्मत थी उसे किया है, ये मेरी जिन्दगी में टुकड़े हो जाय । वर्ना ये टुकड़े हो जायगा । इसका तजुर्बा और लोगों के हालात देखकर मालूम होता है।

तो दो ही शर्तें हैं। एक तो ये कि अदब का लिहाज़ रखें । इसका मतलव ये नहीं है कि वो तालीम न दें। नहीं, तालीम भी दें, उनसे बेत (दीक्षा देना) भी कराई जाती है ताकि आगे लोगों को इसंका इल्म (जानकारी) हो जाय कि किस तरह से बँत करते हैं । ऐसा न हो कि उनकी इसको वाक़फ़ियत (जानकारी) न हो । लेकिन ये समझें कि ये मुरीद जो हैं ये मेरे नहीं हैं वल्कि जिसके हुकुम से ये किये गये हैं उसी के हैं। ऐसा होता है, जैसा और मजहबों में भी है कि अगर वहाँ पर गुरु खुद नहीं

पहुँच सकता है तो writing से (पत्र द्वारा) वहाँ के किसी मानीटर से कह देता है कि तुम इसे अपने हाथ पर बैत कर लो लेकिन ऐसी बैत गुरु के नाम पर मानी जायगी ।

दूसरा तरीका हमारे यहाँ यह है कि जिन शख्सों (व्यक्तियों) ने एक गुरु से उपदेश लिया है और अगर उनकी तकमील (पूर्णता) नहीं हुई है, उसी सिलसिले के किसी बुजगें से उन्होंने तकमील कर ली है तो आयन्दा को वो बैत अपने गुरु के ही नाम पर करते हैं । पहले मेरा ख्याल ऐसा नहीं था। मगर मैं ग़लती पर था । बाद में मुझे मालूम हुआ कि तरीक़ा यही है कि जिनसे उपदेश (दीक्षा, बेत) लिया जाता है उन्हीं के नाम पर आयन्दा को (आगे) बेत (दीक्षा) की जाती है । जैसे भाइयों में दोनों शख्स, बाबू सेवती परशाद और डाक्टर श्यामलाल साहब, ये आयन्दा जो बैत करेंगे, मेरी ज़िन्दगी के बाद, वो हज़रत क़िबला लालाजी साहब के हाथ पर बैत करेंगे । लड़कों में से हालाँकि उनसे (पूज्य लाला जी साहब) से वास्ता नहीं है directly (सीधा), हैं सब उन्हीं की औलाद, वो लाला जी के हाथ पर बैत नहीं करेंगे ।

क्या सावधानी बरतें ?

इसके सिलसिले में मैं बार वार अर्ज़ करता रहा हूँ । इस वक्त मैं सिफ़ इतना अर्ज़ करूँगा कि इनको किन-किन बातों का खास ख्याल रखना चाहिए और मुझे पूरी उम्मेद है कि ऐसा ही होगा आयन्दा (भविष्य में)। परमात्मा की दया से दुनियाँवी तरीके से इन चारों शख्सों में सब खशहाल (सम्पन्न) हैं, ऐसे नहीं हैं कि उनको अपनी रोज़ी की फिकर हो । एक बात तो यह है कि जो रुपया नज़राने में आवे उसको अपने ऊपर किसी तरह से भी खर्च न करें। ये जरूर है कि बहुत से खर्चे ऐसे हैं कि हम उसको जाहिर नहीं करना चाहते। किसी की लड़कियाँ पढ़ रहीं हैं, किसी बेवा (विधवा) को रुपया भेजा जा रहा है, किसी की शादी का संवॉल दरपेश (सामने) है । तो ये जो रुपया दान कर दिया जाय उसके account (हिसाब) रखने की जुरूरत नहीं है । उसका हिसाब दिल में रखो। तो जो आवे उसी को ख़र्च करना है दूसरी मद्द (काम) में । किसी को न बतलायें, अपने दिल को बतलायें लेकिन दिल में हमेशा ये देखते रहें कि कोई रुपया सत्संग का हमारे पास तो नहीं है । परमात्मा ने तुम्हें सब कुछ दिया है और तुम्हारी नियत ठीक रही तो परमात्मा हर तरह से तुम्हारी निगरानी (देखभाल) करेगा । लेकिन' सत्संग का पैसा किसी तरह से भी अपने ऊपर खर्च मत करो । अगर किसी ने कपड़ा दिया है तो उसकी भी कीमत सत्संग में किसी तरीके से डाल दो । अगर वख्त पे आज (आपके खर्च में) आ गया है (आपके पास) नहीं है तो, साल में दो साल में, जब भी मौक़ा मिले और चलते वक्त जब जाओ खूब अच्छी तरह से ख़ाली होकर जाआ ताकि बाद में बदनामी न हो और वहाँ पे (ईश्वर के दरबार में) जवाब देना न पड़े । यह है एक बात ।

दूसरी बात ये है कि हमारे यहाँ का तरीक़ा गुरुआई का नहीं है । हमारे यहाँ का तरीक़ा असली तो ये है कि दिल में तुम खिदमतगार (सेवक) बने रहो। ये जो खिदमत (सेवा) तुम्हारे जिम्मे है ये खिदमत गुरु की है तुम्हारे दिल में ये हो कि खिदमत कर रहे हैं । अगर तमने ख़िदमत अन्जाम ठीक तरह से दी (ठीक प्रकार सेवा की) तो उसकी नज़्रे-महर (कृपा दृष्टि होगी)।

हमारे यहाँ का तरीक़ा

हमारे यहाँ का तरीक़ा, मैं साथ में अर्ज़ कर दूँ, हमारे का तरीक़ा, प्रेम का है, कर्म का नहीं है । यहाँ मेहनत की मज़दूरी मिलेगी ज़रूर। जितनी भी आप रियाज़त करते हैं और अभ्यास करते हैं उसका फ़ायदा ज़रूर मिलेगा लेकिन उसका बदला मोक्ष' नहीं है । धर्म का बदला धर्म है । अच्छी ज़िन्दगी है, एशो-आराम है, महनत की मज़दूरी है । हाँ, हमारे यहाँ का तरीका प्रेम का है, प्रेम से ख़िदमत करो । जो कुछ उसका है (ईश्वर का है) वह सब तुम्हारा है । यह फज़्ल (ईश्वर कृपा) का तरोक़ा है। और ये जाने कब से चला आ रहा है। ये नया नहीं है । वेदान्त को उठाके देख लीजिये । वह साफ़ लिखता है कि कर्मकाण्ड का तरीक़ा स्वर्ग-लोक तक ले जाता है और परमात्मा के फ़ज़्ल का तरीक़ा सदर (धुरधाम) तक ले जाता है। लोग-बाग धोखे में हैं । वो कहते हैं कि हमने जो कुछ किया क्या वह सबका सब ख़त्म हो गया ? नहीं, इस मामले में एक ख़ास खूबी (विशेषता) है । अगर आपने एक दफ़ा भी राम का नाम लिया है तो आपको हज़ार गुना हिस्सा ऊसका मिलेगा, लेकिन मोक्ष नहीं मिलेगी । मोक्ष 'फज़्ल' (ईश्वर कृपा) का तरीक़ा है । फज़्ल क्या है, जिस पर उसकी रहमत (कृपा) हो, जिस पर उसकी मेहरबनी हो । इसका तुम्हें हक़ नहीं है । जिससे वह खुश है उसके लिए मोक्ष है, उसके दिल में परमात्मा का प्रेम आ जाता है | प्रेम ही एक ऐसी चीज है कि जिसका बदला नहीं है । माँ-बाप का बदला क्या कोई दे सकता है ? पेदायश से ही माँ-बाप अपने बच्चों के लिये जो तकलीफें उठाते हैं क्या उसका कोई बदला है ? आप जिससे प्रेम करते हैं अपना सब कुछ उस पर न्यौछावर कर देते हैं, क्या उसका बदला रुपया दे सकता है ? प्रेम का कोई बदला नहीं है । जिस वक्त में शिष्य अपनी सब चीज को यहाँ तक कि तन, मन, धन छोड़ कर अपनी जान को भी अर्पण कर देता है, अपने गुरु के या परमात्मा के, तो इसका बदला क्या है, इसका बदला यह है, कि जो गुरु का, जो परमात्मा का है बह तुम्हारा है और उसके बाद सबसे ऊँची चीज जो मिलती है, वह यह है कि तुम्हें मोक्ष का अधिकारी बना कर मोक्ष दिलवाती है। तो यह फ़ज़्ल का तरीक़ा है।

सेवा करो दीनता आपनाओं

अब यह है कि उनके रास्ते पर चलो । अगर तुमने इन बातों को माना कि खिदमत (सेवा) करना हमारा फ़र्ज (कर्त्तव्य) है तो हर वक़्त ध्यान रहे कि हम गुरुः नहीं हैं। अगर मन जरा भी तंग करे तो ठोकर मार कर उसको नीचे डाल दो और ऐसी जगह बैठो जहाँ यह खयाल न हो कि मैं ऊंची जगह बैठा हूँ, गुरु हो गया हूँ, नीची जगह जाकर बेंठ जाओ । पैर छुआने में अगर तुमको ग़रूर (अभिमान) आने लगा है, कभी किसी से पैर मत छुआओ । जिस चीज् से जरा भी ग़रूर (अहंकार) हो उसे तोड़ कर फेंक दो ।

हमारे यहाँ का तरीक़ा खिदमत (सेवा) का है । जब तक ये दोनों बातें रहेंगी, आपका तरीक़ा चलेगा । प्रेम करो । अपनी जान फ़िदा (न्यौंछावर) कर दो गुरु पर, तब तक यह चलेगा और आगे चल कर फिर जब ये बातें नहीं रहती हैं तो ये जाता रहता है।

दूसरी (बात) देखिये जो मैं अर्ज़ कर रहा हूँ, इसकी गवाह श्री रामायण है, श्रीमद् भगवत गीता है। आप देखिये ऋषि व्यास जी फ़रमाते हैं कि परमात्मा सबसे ज़्यादा उसको प्यार करता है जो उसके नाम को फैलाता है । इस नाम के लिये ही भगवान कृष्ण फ़रमाते हैं कि सबसे ज़्यादा प्राणियों में मुझको वह प्यारा है जो मेरा नाम जपता है और दूसरों का भला करता है । तो गुरु जब किसी से मौहब्बत करता है और उसकी जाँ-निसारी (जी जान से न्योछावर होना) का बदला देना चाहता है तो ये ही करता है कि उसको (प्रवचन के बीच में ही प्रश्न पूज्य श्री सेवती प्रसाद साहब से, आपने डाक्टर महेश चन्द्र का नाम लिख दिया उत्तर-"जी हाँ)" इसका बदला वो ये ही देता हैं कि उसको अपना प्रेम देता है । वो जिससे (ईश्वर से) प्रेम करता है जो उससे प्रेम करने लगते हैं, उसके प्रेम के साथ में अगर वो दरअसल परमात्मा का भक्त है तो परमात्मा का प्रेम आ जाता है और आहिस्ता-आहिस्ता वह चमक उठता है । शुरू के अन्दर गुरु का प्रेम नजर आता है, मगर थोड़े

दिनों के बाद नजर आयगा कि गुरु का प्रेम नहीं रहता और गुरु की जगह परमात्मा ले लेता है । गुरु का ख्याल भी नहीं आता । गुरु का ख्याल तो इतना आता हुँ जितना शादी होने के बाद एक बेटी को अपने बाप का ख्याल आता है । रिश्ता तो उसका अपने पति का होता है लेकिन अपनी मुसीबत के वक्त कभी बाप को याद कर लेती है। इसी तरह से अभ्यासी का गुरु तथां पति परमात्मा है । गुरु वास्तेदार (माध्यम) बीच में है । पाल-पोसकर बड़ा कर देता है और जब स्त्री (शिष्य) की जवानी (पूर्णता) का वक़्त आता है तो परमात्मा के हवाले कर देता है और खुद पीछे आ जाता है । अब उसका ideal (लक्ष्य) उसका पति (परमात्मा) है । इसी तरह से गुरु उमर भर तंयार करता है और जब देखता है कि हाँ, जवानी के आसार (लक्षण) आ गये यानी उसमें परमात्मा का प्रेम झलकने लगा, तब वो उसके (परमात्मा के) सामने कर देता है, खुद पीछे आ जाता है । यह बात बिल्कुल साफ़ हें कि गुरु कभी नहीं आयेगा परमात्मा के बीच में । असली गुरु परमात्मा है, वो तो एक ज़रिया (माध्यम) था। अब वो उम्र भर तक देख-भाल रखता है और मदद करता रहता है

xxxx

परमात्मा के प्रेम के अधिकारी कौन हैं ?

इसी तरह से जो शख्स इस काम को करते हैं वो परमात्मा के प्रम के अधिकारी हैं । अगर आप हज़ार बरस भी सच्चे दिल से इबादत (उपासना) करते रहें तो भी ये नियामत नहीं मिलेगी जो आपको सच्चे दिल से परमात्मा के प्रेम करने से और खिदमत (सेवा) करने से, पबलिक (जन साधारण) की, मिलेगी । गुरु को जिनको निकालना होता है भवसागर से उनको वो पवलिक (जन-साधारण) की खिदमत (सेवा) सुपुर्द कर देता है । तो ये खिदमत (सेवा) आपका फ़र्ज (कर्तव्य) है कि जिस तरह से भी हो करना चाहिए । पुराने बुज़्गों (महापुरुषों) को जीवनी पढ़ो –हमारा इखलाक़ इतना अच्छा नहीं है जितना हमारे बुजुर्गों का है । लिहाजा (अतः) सवाने उमरी (जीवन चरित्र) उनकी biography (जीवनी) सब आप लोगों को मालूम है , writing (लिखित) में मौजूद है, उनको पढ़ो और उसे अपनी जिन्दगी का रहवर (पथ प्रदर्शक) बनाओ । परमात्मा तुमको इस काम में कामयाबी (सफलता) दे ।

नोट--उपरोक्त इजाज़तें परमसन्त डा० श्रीकृष्ण लाल जी 'महाराज ने स्वयं रद्द कर दी थीं। देखें रामसंदेश अगम्त १९६१ पेज ४७।

चेतावनी

सत्संग मे अभ्यासियों को बढ़ती हुई तादाद (संख्या) को देखकर ख़ुशी होती है और ख्याल होता है कि जमाना जल्द तब्दील होने (बदलने) वाला है वह वक्त जल्द आने वाला है जब लोग परमार्थ की जानिब (ओर) तेज़ी से चलेंगे और हर जगह राम राज्य होगा । लेकिन थोड़े दिन तजुर्बा करने के बाद असलियत खुलती है और आँखों के सामने से पर्दा हट जाता है और मालूम हो जाता है कि जमाना पहले से बेहतर (अच्छा) नही बल्कि बदतर (बुरा) हो गया है । लोगों की दुनियांवी जरूरियात (सांसारिक आवश्यकतायें) बहुत बढ़ गयी है । और जब उनकी पूर्ति उनकी अपनी ताक़त से नहों हो सकती परमात्मा की तरफ रागिब (आकृष्ट) होते हैं, इस ख्याल से कि उसके नाम लेने से दुनियाँवी गर्ज (इच्छा) पूरी हो जाय । वे परमात्मा से प्रेम नहीं करते वल्कि दुनियाँवी चीज़ों से प्रेम करते हैं और परमात्मा के प्रेम को इन चीजों के हासिल करने का जरिया (साधन) बनाना चाहते हैं । इससे जान पड़ता है कि अभी घोर कलियूग और आने वाला है । आजकल रुपया, स्त्री और शहवत परस्ती (कामुकता) का राज्य है । जहाँ देखो इसी की चर्चा है और आयन्दा (भविष्य में) बदतर (और बुरी) हालत होने वाली है । सत्संगियों को चाहिए कि इससे सावधान रहें ।

--श्रीकृष्ण

सागर के मोती

गुरु को जिस भाव से देखोगे वैसा ही लाभ होगा । मनुष्य समझोगे मनुष्य का सा लाभ होगा। अगर ईश्वर समझते हो ती ईश्वर का सा लाभ होगा

जब तक दीनता नहीं आती तब तक आपा नहीं मिटता । आपा मिटे बगेर आत्मा का साक्षात्कार नहीं हो सकता और आत्मानुभव के बिना उद्धार नहीं होता हैं। स्वार्थ और परमार्थ साथ साथ नहीं चल शकते।

अपनी आँख का तिल तो दीखता नहीं और दूसरों की आँख में गिरा हुआ छोटे से छोटा तिनका भी दीख जाता हैं । अपना नुक्स किसी को नही दीखता, दूसरे का छोटा ऐब भी फौरन दीख जाता हैं। यह मनुष्य का स्वभाव हैं। ईश्वर में भी दोष देखते हैं । उसे अन्यायी बताते हैं । कैसे आश्चर्य की बात हैं ? ।

जब आपने सब कुछ सुपुर्द कर दिया ईश्वर के अब उसके आसरे बैठे हुए हैं । जो कुछ हो रहा हैं ठीक हो रहा हैं, जो होगा वह भी ठीक होगा । समर्पण हो गया । जहाँ समर्पण हैं वहाँ इच्छा नहीं होती । जहाँ इच्छा नहीं वहाँ कर्म नहीं, जहाँ कर्म नहीं वहाँ आवागमन नहीं ।

परमसन्त डा० श्री कृष्ण लाल जी महाराज ।